वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 344
ISBN-978-93-82071-69-3

पंचकल्याणक निर्देशिका

(जैन शासन में ध्वज परम्परा सहित)

–मंगल प्रेरणा एवं आशीर्वाद –

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी

– प्रस्तुति–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी
अमृत महोत्सव (वर्ष 2013-2014) के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र., फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2540	मूल्य
500 प्रतियाँ	पौष कृ. एकादशी	32/-रु.
	28 दिसम्बर 2013	

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

(दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक:–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का मंगल आशीर्वाद

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा धार्मिक विधि-विधानों की एक ऐसी शृँखलाबद्ध परिमार्जित प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से पाषाण अथवा धातु की प्रतिमा को भगवान जिनेन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया जाता है। पूर्वाचार्यों ने इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को लेखनीबद्ध करके हम सब पर महान उपकार किया है।

वर्तमान में पारस चैनल पर जब विविध स्थानों पर आयोजित पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं का प्रसारण किया जाता है। तब उसमें कतिपय ऐसी विसंगतियाँ देखने में आती हैं, जिससे पूर्वाचार्यों की वाणी की विपरीतता से हृदय में खेद उत्पन्न होने लगता है। इन्हीं भावनाओं के फलस्वरूप मैंने आर्यिका चंदनामती जी को पंचकल्याणकों हेतु विशेष आगमोक्त दिशा-निर्देश सहित एक कृति तैयार करने हेतु प्रेरित किया। मेरी भावनानुसार उन्होंने अल्प समय में आजकल जैन समाज में व्याप्त पंचकल्याणक संबंधी विसंगतियों के आगमोक्त निराकरण का सुंदर प्रयास किया है, जिसके लिए वह विशेष मंगल आशीर्वाद की पात्र हैं।

भोगभूमिजों को आदिवासी बनाकर प्रस्तुत करना, दीक्षाकल्याणक में प्रतिष्ठेय प्रतिमाओं पर अंकन्यास की विधि कर देना, तीर्थंकर भगवन्तों पर 28 मूलगुणों का आरोपण करना इत्यादि अनेक विसंगतियों से जैन प्रतिष्ठाचार्य बचें एवं पूर्वाचार्यों की वाणी का ही अनुसरण करें, यही इस कृति की प्रस्तुति के पीछे मेरी मंगल भावना रही है।

पंचकल्याणकों हेतु दिशा-निर्देश के साथ 'जैनशासन में ध्वज परम्परा' का आगमोक्त शोधपूर्ण प्रस्तुति करण भी आर्यिका चन्दनामती जी द्वारा इस पुस्तक में किया गया है। सुधी पाठकों को यह भी रुचिकर प्रतीत होगा।

भव्यजीवों को सम्यक्त्वरूपी निधि को प्रदान करने वाली जिनप्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा आगमानुसार ही सम्पन्न हो, इसी मंगल भावना के साथ आर्यिका चंदनामती माताजी एवं इस कृति का लाभ लेने वाले सभी महानुभावों एवं प्रतिष्ठाचार्यों हेतु मेरा बहुत-बहुत मंगल आशीर्वाद है।

12 दिसम्बर 2013 **जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर**

सम्पादकीय

–स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी

सम्पूर्ण जैन समाज में मनाए जाने वाले विभिन्न उत्सव-महोत्सवों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण आयोजन है-पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव। इसमें पाषाण की प्रतिमा को मंत्र आदि विशेष क्रियाओं के द्वारा जगत्पूज्य भगवान बनाया जाता है अतः प्रारंभ से लेकर अंत तक कहाँ, कब, क्या विधि किस प्रकार करनी है ? इस बात को इस ''पंचकल्याणक निर्देशिका एवं जैन शासन में ध्वज परम्परा'' पुस्तक में क्रमशः बताया गया है।

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के निर्देशानुसार प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने परिश्रमपूर्वक इस पुस्तक को प्रतिष्ठाचार्य महानुभावों के लिए विशेषरूप से संकलित किया है। इसमें सर्वप्रथम प्रतिष्ठाचार्य कैसा होना चाहिए अर्थात् एक कुशल प्रतिष्ठाचार्य में किन-किन गुणों का समावेश होना चाहिए, इस बात को सुन्दरता से लेखनीबद्ध किया गया है क्योंकि प्रतिष्ठा महोत्सव का सबसे बड़ा संबंध प्रतिष्ठाचार्य से होता है पुनः यजमान आदि की विशेषताओं को भी बताया गया है।

प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न कराने हेतु प्रतिष्ठाचार्य को प्राचीन और प्रचलित ''प्रतिष्ठातिलक'' ग्रंथ के आधार से ही पंचकल्याणक प्रतिष्ठा जैसे महत्वपूर्ण आयोजन को सम्पादित कराना चाहिए क्योंकि इस ग्रंथ के अन्दर 18 परिच्छेदों में सम्पूर्ण विधि क्रमानुसार वर्णित है।

इस पुस्तक में पूज्य माताजी ने कतिपय बिन्दुओं के द्वारा अनेक विषयों का स्पष्टीकरण किया है पुनः जैन शासन में ध्वज की क्या परम्परा है ? इस विषय को भी आगमानुसार ही दिया गया है क्योंकि प्रत्येक शुभ कार्यों का प्रारंभीकरण ध्वजारोहण से ही होता है पुनः पाँचों कल्याणकों की अन्तरंग एवं बाह्य समस्त विधियों को सजीवता से निर्देशित किया है।

इस पूरी पुस्तक को आद्योपान्त पढ़कर यदि प्रतिष्ठाचार्यगण इसमें लिखी गई प्रत्येक बातों पर अमल करते हुए पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सवों को सम्पन्न करेंगे, तो प्रतिष्ठित प्रतिमाओं में एक विशेष अतिशय-चमत्कार अवश्य दृष्टिगोचर होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

-प्रकाशन सौजन्य-

श्रीमती वीना जैन ध.प. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन (यू.एस.ए.)
सोहना रोड, गुड़गाँवा (हरियाणा)

संस्थान की ओर से हम आपकी ज्ञानदान की श्रेष्ठ भावनाओं का सम्मान करते हुए इस महत्वपूर्ण पुस्तक के प्रकाशन में सौजन्य प्रदान करने हेतु अत्यन्त आभार एवं धन्यवाद ज्ञापित करते हैं। आगे भी संस्थान को आपका सहयोग प्राप्त होता रहे, ऐसी आशा है।

प्रस्तावना

–ब्र. कु. सारिका जैन (संघस्थ)

जैनधर्म में मुख्यरूप से तीन रत्न माने गये हैं– देव-शास्त्र और गुरु। इन तीन रत्नों की उपासना करने से अन्य तीन रत्नों-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की प्राप्ति होती है अर्थात् सच्चे देव-वीतराग जिनेन्द्र भगवान की आराधना करने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है, समीचीन शास्त्रों का स्वाध्याय करने से सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है तथा निर्ग्रन्थ गुरुओं की पूजा-भक्ति करने से सम्यक्चारित्र प्रगट होता है। इन तीनों में से सम्यग्दर्शन को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है। पं. दौलतराम जी ने छहढाला में यहाँ तक कहा है कि–

मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान-चरित्रा।
सम्यक्ता न लहें सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।।

मोक्षरूपी महल की प्रथम सीढ़ी है सम्यग्दर्शन। जब तक सम्यग्दर्शन नहीं है, तब तक ज्ञान और चारित्र सम्यक् अर्थात् सच्चे नहीं हो सकते हैं अतः भव्य प्राणियों! सम्यग्दर्शन को धारण करो।

भगवान जिनेन्द्र की प्रतिमाएँ अनेकानेक भव्यात्माओं को सम्यग्दर्शन उत्पन्न कराने में प्रबल निमित्त होती है अतः उनकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के समय सम्पन्न होने वाली समस्त महत्वपूर्ण क्रियाओं के बारे में प्रतिष्ठाचार्यों को आगमानुसार जानकारी होना परम आवश्यक है।

इस 'पंचकल्याणक निर्देशिका एवं जैन शासन में ध्वज परम्परा' नामक पुस्तक में पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने प्रारंभ से लेकर अंत तक होने वाली प्रत्येक क्रियाओं का वर्णन किया है, जिसके आधार से प्रतिष्ठा सम्पन्न कराने पर प्रतिमाओं में विशेष अतिशय-चमत्कार देखने को मिलेगा।

वर्तमान में पारस चैनल के माध्यम से विभिन्न स्थानों पर सम्पन्न हो रहे पंचकल्याणक महोत्सवों में कुछ विषमताएँ देखने को मिलीं, अतः पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से पूज्य आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने परिश्रमपूर्वक प्रतिष्ठा ग्रंथों का आलोडन करके इस पुस्तक को तैयार किया है।

इस पुस्तक में प्रकाशित सभी बिन्दुओं का सूक्ष्मता से अवलोकन करके प्रतिष्ठाचार्यगण पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सवों को सम्पन्न करावें, यही इसकी सार्थकता है।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान– टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि– आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)

जाति– अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र–** गोयल, **नाम–** कु. मैना

माता-पिता– श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत– ई. सन् 1952, बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा– चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम-क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा– वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व– अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं लगभग 300 ग्रंथों की लेखिका।

डी.लिट्. की मानद उपाधि– सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा– हस्तिनापुर में जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा-भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा, महावीर जी तीर्थ पर महावीर धाम में पंचबालयति मंदिर, शिर्डी में ज्ञानतीर्थ, सम्मेदशिखर में आचार्य श्री शांतिसागर धाम इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा– पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।

शैक्षणिक प्रेरणा– 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार, ऑनलाइन जैन इनसाइक्लोपीडिया आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा– जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, रोहतक, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
13. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.
14. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
15. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
16. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।
17. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कॉनॉट प्लेस, नई दिल्ली।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. स्व. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
19. श्री प्रद्युम्न कुमार जैन छोटी सा., श्री अमरचंद जैन सर्राफ, लखनऊ (उ.प्र.)
20. श्रीमती शशि जैन ध.प. श्री दिनेशचंद जैन, शिवालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
21. श्रीमती आदर्श जैन ध.प. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, मेरठ।
22. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

-कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् 1974 से हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं-

1. सन् 1972 से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के अन्तर्गत प्रतिवर्ष लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं।

2. सन् 1974 से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।

3. सन् 1974 से 1985 तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।

4. सन् 1974 से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है- कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद मंदिर, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना, तीन लोक रचना, नवग्रहशांति जिनमंदिर, चौबीस तीर्थंकर मंदिर एवं श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग प्रतिमाओं की स्थापना ।

5. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग 15000 ग्रंथ संग्रहीत हैं।

6. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये करोड़ों णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।

7. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन किये जाते हैं।

8. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।

9. यात्रियों के ठहरने के लिए आधुनिक सुविधायुक्त डीलक्स फ्लैट्स वाली कई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।

10. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी तथा मनोरंजन हेतु मिनी ट्रेन, झूले आदि हैं।

11. तीर्थंकर जन्मभूमियों की वंदना एवं धार्मिक फिल्मों का प्रदर्शन करने वाले थियेटर से समन्वित गणिनी ज्ञानमती हीरक जयंती एक्सप्रेस।

12. गणिनी ज्ञानमती दिगम्बर जैन पत्राचार परीक्षा केन्द्र का संचालन।

13. इंटरनेट पर जैनधर्म के इन्साइक्लोपीडिया (www.encyclopediaofjainism. com) का निर्माण।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तक आने के लिए दिन भर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य नंद्यावर्त महल तीर्थ, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ तथा महावीर जी अतिशय क्षेत्र के महावीर धाम परिसर में निर्मित पंचबालयति दिगम्बर जैन मंदिर का संचालन होता है। वर्तमान में इस संस्थान के अन्तर्गत सम्मेदशिखर जीतीर्थ पर "आचार्य श्री शांतिसागर धाम" का निर्माण प्रारंभ किया जा रहा है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य रचनाओं के दर्शन हेतु हस्तिनापुर पधारकर आध्यात्मिक एवं भौतिक सुख की प्राप्ति करें।

पंचकल्याणक निर्देशिका

मंगलाचरण

शार्दूलविक्रीडित छंद

शांतिः कुंथ्वरनाथशक्रमहिताः सर्वैः गुणैरन्विताः।
ते सर्वे तीर्थेशचक्रिमदनैः पदवीत्रिभिः संयुताः।।
तीर्थंकरत्रयजन्ममृत्युरहिताः सिद्धालये संस्थिताः।
ते सर्वे कुर्वन्तु शान्तिमनिशं तेभ्यो जिनेभ्यो नमः।।1।।

तीर्थंकर श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ भगवान इन्द्रों से वन्दित समस्त गुणों से विभूषित थे, तीर्थंकर-चक्रवर्ती और कामदेव इन तीन पदवियों से समन्वित वे तीनों भगवान जन्म-जरा-मृत्यु से रहित होकर सिद्धालय – सिद्धशिला पर विराजमान हो चुके हैं, उन्हें मेरा नमस्कार है, वे मुझे शीघ्र ही शान्ति को प्रदान करें।

तीर्थंकरत्रय भगवन्तों को नमन करके परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की पावन प्रेरणा एवं उनके ही मार्गदर्शनरूप बिन्दुओं के आधार पर ''पंचकल्याणक निर्देशिका'' नामक कृति का शुभारंभ किया जा रहा है। देशव्रती प्रतिष्ठाचार्यगण निष्पक्ष और निर्मत्सर भाव से सूक्ष्मता से चिन्तन करके प्राचीन शास्त्रीय-आर्ष परम्परानुसार प्रतिष्ठा विधि को सम्पन्न करें, इस निर्देशिका के प्रस्तुतीकरण में एकमात्र यही भावना है।

सर्वप्रथम एक सर्वांगीण प्रतिष्ठाचार्य में किन-किन गुणों की विशेष आवश्यकता होती है, इस विषय पर ध्यान देना है –

(1) देश-कुल और जाति से शुद्ध सदाचारी श्रावक अथवा ब्रह्मचारी श्रावक ही प्रतिष्ठाचार्य बनने योग्य होते हैं। कम से कम अणुव्रती तो अवश्य होना चाहिए।

(2) प्रतिष्ठा ग्रंथ के साथ-साथ मुहूर्त, ज्योतिष, वास्तु शास्त्रों का अध्ययन भी प्रतिष्ठाचार्य को होना चाहिए।

(3) चारों अनुयोगों के भी कतिपय ग्रंथों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए, ताकि प्रत्येक विषय को स्पष्टरूप से प्रतिपादन करने में शास्त्रप्रमाण दिये जा सकें।

(4) कुशल वक्तृत्व कला प्रतिष्ठाचार्य का प्रमुख गुण है।

(5) चतुर्विध संघ के प्रति विनयभाव रखते हुए समाज में सभी साधु-संतों के प्रति भक्ति प्रवाहित करें।

(6) वात्सल्य स्वभावी और मन्दकषायी हों, किसी के द्वारा प्रश्न करने पर क्रोध या मान का प्रदर्शन न करें।

(7) दिगम्बर जैन समाज के अन्दर वर्तमान में प्रचलित बीसपंथ और तेरहपंथ इन दोनों परम्पराओं में मध्यस्थ भाव रखें।

किसी पंथ का विरोध न करें और जहाँ जिस पंथ की परम्परा चल रही हो, वहाँ उसी परम्परानुसार प्रतिष्ठाविधि करावें। कहीं पर अपनी परम्परा जबर्दस्ती लागू करने का दुराग्रह न करें, इससे सामाजिक शान्ति और सामंजस्य बना रहेगा।

(8) सार्वजनिक सभाओं में प्रतिष्ठाचार्य को मद्य, माँस, मधुत्याग, सप्तव्यसन त्याग, अहिंसा-सदाचार का पालन आदि का उपदेश देकर सभी सम्प्रदाय की जनता को प्रभावित करना चाहिए।

(9) प्रतिष्ठाचार्य को कभी किसी के दबाव से या ख्याति, लाभ, पूजादि की लालच से आगमविरुद्ध विषयों का प्रतिपादन नहीं करना चाहिए और न ही आगमविरुद्ध कथन का समर्थन करना चाहिए।

मैं एक भी शब्द यदि आगम के विरुद्ध बोलूँगा, तो नरक-निगोद का बंध हो जायेगा, इस प्रकार के भय से सहित होकर जिनेन्द्रदेव की आज्ञा उल्लंघन से हमेशा डरना चाहिए।

ये कतिपय आवश्यक गुण प्राथमिकरूप से एक प्रतिभावान् योग्य प्रतिष्ठाचार्य में होना ही चाहिए, तभी पाषाण, धातु, सोना, चाँदी या रत्न आदि से बनी जिनप्रतिमाओं की प्रतिष्ठा में अतिशय आता है।

यदि उपर्युक्त गुणों से युक्त प्रतिष्ठाचार्य नहीं हैं और यजमान श्रावकगण विशेषगुणों से समन्वित हैं, तो भी ठीक नहीं है किन्तु यदि प्रतिष्ठाचार्य अपने गुणों से युक्त हैं और यजमान आदि अपने-अपने गुणों से युक्त नहीं हैं तो भी गुणवान प्रतिष्ठाचार्य के निमित्त से वे सभी योग्य हो जाते हैं इसीलिए प्रतिष्ठाचार्य को उज्जवल गुणों से युक्त, सद्गृहस्थ अथवा ब्रह्मचारी देशव्रती, शुभ आजीविका करने वाला, हित-मित-प्रिय वचन बोलने वाला, परोपकारी, सांगोपांग (हीनांग या अधिकांग न हो), शास्त्रज्ञानी अवश्य होना चाहिए।

ये कतिपय विशेष गुण यहाँ प्रतिष्ठाचार्य के लिए कहे गये हैं। इन गुणों से युक्त प्रतिष्ठाचार्य आगम विधि अनुसार प्रतिष्ठा में भाग लेने वाले यजमानों का चयन बोली आदि के अनुसार करते हैं। उसमें भी सज्जाति की शुद्धि का विशेष

ध्यान रखना चाहिए, तभी प्रतिमाओं में अतिशय-चमत्कार अवतीर्ण होते हैं।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा प्रारंभ होने से लेकर समापन होने तक प्रमुख प्रतिष्ठाचार्य, सहप्रतिष्ठाचार्य आदि सभी पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करें, शुद्ध मर्यादित भोजन एक बार करें और एक बार फलाहार लें एवं यजमानों से भी सम्पूर्ण नियमों का पालन करावें तथा औषधि-जल आदि की उनके लिए छूट प्रदान कर दें किन्तु रात्रि में सभी को चारों प्रकार के आहार का त्याग करावें अर्थात् रात्रि में जल पीने का भी त्याग करा देवें।

प्रतिष्ठा ग्रंथ के संदर्भ में–

प्राचीन ग्रंथों के आधार से पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न कराने वाले प्रतिष्ठाचार्यों को प्रायः ''प्रतिष्ठातिलक'' नामक ग्रंथ का प्रयोग करते देखा है तथा वर्तमान में निम्न प्रतिष्ठा ग्रंथ हमारे देखने में आये हैं–

(1) प्रतिष्ठातिलक–नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेव द्वारा रचित

(2) प्रतिष्ठासारोद्धार–पं. आशाधर द्वारा रचित

(3) प्रतिष्ठाकल्प–आचार्य अकलंकदेव द्वारा रचित

(4) वसुविन्दु प्रतिष्ठा पाठ

(5) प्रतिष्ठापाठ–ब्र. शीतलप्रसाद द्वारा रचित

इनके अतिरिक्त भी कुछ लिखित या संग्रहीत ग्रंथ हो सकते हैं किन्तु इन सबमें सबसे अधिक प्रचलित ग्रंथ है-प्रतिष्ठातिलक। इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्रारंभ से लेकर सम्पूर्ण विधि क्रमानुसार परिपूर्ण है अतः पंचकल्याणक में प्रारंभिक झण्डारोहण-अंकुरारोपण आदि से लेकर निर्वाणकल्याणक के बाद रथयात्रा महोत्सव, महाभिषेक आदि तक सम्पूर्ण विधि को 18 परिच्छेदों में वर्णित किया है। इस ग्रंथ को हाथ में लेने के बाद किसी भी विधि के लिए किसी अन्य ग्रंथ की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

इस प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ से परिचित कराने हेतु सर्वप्रथम उसके विषय में कुछ आवश्यक बिन्दु यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

प्रतिष्ठातिलक में क्या विशेषता है ?–

सम्यग्दर्शन के प्रभावना अंग का वर्णन करते हुए स्वामी श्री समन्तभद्राचार्य ने कहा है–

अज्ञानतिमिरव्याप्ति-मपाकृत्ययथायथम्।
जिनशासनमाहात्म्य-प्रकाशः स्यात्प्रभावना।।

अर्थात् संसार में अज्ञानरूपी अंधकारसमूह को दूर करके यथासंभव जैन शासन की महिमा को प्रकाशित करना–जैनधर्म का प्रचार-प्रसार करना प्रभावना

अंग का लक्षण है।

इस प्रभावना अंग का पालन करने में श्रावक और साधु दोनों का महत्वपूर्ण योगदान देखा जाता है। चतुर्थकाल में भी मुनिजन तीर्थयात्रा करके एवं रथोत्सव, पंचकल्याणक महापूजा आदि में अपना संघसानिध्य प्रदान करके जिनधर्म की प्रभावना करते थे और पंचमकाल में भी मुनियों के लिए श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव ने प्रवचनसार में बताया है–

दंसण णाणुवदेसो, सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं।
चरिया हि सरागाणां, जिणिन्दपूजोवदेसो य।।

अर्थात् पंचमकाल के छठे-सातवें गुणस्थानवर्ती भावलिंगी सरागी मुनि जो वीतरागनिर्विकल्प ध्यान में जब तक स्थित नहीं हो सकते हैं, तब तक वे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि का उपदेश देते हुए शिष्यों का संग्रह और उनका पोषण करें तथा जिनेन्द्र पूजा का उपदेश देकर भव्यात्माओं को मोक्षमार्ग में अग्रसर करें।

इसका तात्पर्य यह निकलता है कि निर्ग्रन्थ मुनि एवं आर्यिका आदि गुरुजन समाज के पथप्रदर्शक होते हैं अतः उन्हें शास्त्रानुकूल चर्यापालन के साथ-साथ सदैव जैनशासन के संरक्षण-संवर्धन हेतु पुण्यबंध कराने वाले सच्चे धर्म का उपदेश करना चाहिए। इसका साक्षात् प्रमाण श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं गिरनार यात्रा करके, विपुलसाहित्यसृजन आदि करके प्रस्तुत किया। आचार्यश्री अकलंकदेव, समन्तभद्र ने अपने ज्ञान के द्वारा अनेकांत का ध्वज लहराया तथा आचार्य श्री नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने श्रवणबेलगोला के भगवान बाहुबली की प्रतिमा के पंचकल्याणक महोत्सव में सानिध्य प्रदान कर एक इतिहास बना दिया।

इन्हीं पूर्वाचार्यों के मार्ग का अनुसरण करते हुए बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी मुनि महाराज ने भी कुंथलगिरि, कुम्भोज, दहिगाँव आदि स्थानों पर जिनप्रतिमा विराजमान करने की प्रेरणा देकर पुनीतकार्य किया है इसीलिए उनके प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर महाराज कहा करते थे कि ''आचार्य शांतिसागर महाराज का दर्शन जिसने किया, उसने अपने जीवन को सफल कर लिया''। पुनः आचार्यश्री वीरसागर महाराज के शिष्य द्वितीय पट्टाधीश आचार्य श्री शिवसागर महाराज की प्रेरणा से श्री महावीर जी अतिशयक्षेत्र पर ''शान्तिवीरनगर'' तीर्थ की स्थापना हुई, जहाँ विशाल खड्गासन भगवान शांतिनाथ की प्रतिमा एवं अनेक जिनमंदिरों के निर्माण हुए हैं। ये सभी धर्मायतन भव्यात्माओं की पुण्यवृद्धि एवं मोक्षप्राप्ति के माध्यम बने हुए हैं।

मंदिर-मूर्तियों के निर्माण के पश्चात् उनकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, वेदीशुद्धि एवं शिखर पर कलशारोहण करना महत्त्वपूर्ण धार्मिक अनुष्ठान माने जाते हैं।

इन अनुष्ठानों को विधिपूर्वक सम्पन्न करने हेतु प्राचीनकाल से हमारे आचार्यों, मुनियों एवं विद्वानों ने पूर्व परम्परा से चले आए मंत्र आदि का आश्रय लेकर विधि-विधान के ग्रंथ लिखकर हमें प्रदान किये हैं।

बंधुओं! पूजा-विधान-पंचकल्याणक आदि महान पुण्यकार्यों में मंत्र संस्कारों का ही सर्वाधिक महत्त्व होता है, क्योंकि उनसे ही पाषाण-धातु या रत्नप्रतिमाओं में भगवान जिनेन्द्र की स्थापना होती है और तभी वे पूज्य मानी जाती हैं। लघु चैत्यालय या विशाल मंदिर के निर्माण से लेकर उसमें भगवान विराजमान करके पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-कलशारोहण करने तक की सम्पूर्ण लघु एवं वृहत्विधि का वर्णन करने वाला यह **''प्रतिष्ठातिलक''** ग्रंथ है, जो श्रीनेमिचन्द्र सैद्धान्तिक देव की अद्भुत साहित्यिककृति है।

वर्तमान में यद्यपि अनेक विद्वानों के द्वारा संग्रहीत किये गये कई प्रतिष्ठाग्रंथ प्रकाश में आये हैं किन्तु पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की मान्यता है कि यह प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ अति प्राचीन होने के साथ-साथ अपने आप में परिपूर्ण है। इसमें प्रारंभिक सकलीकरण विधि से लेकर यज्ञदीक्षा, यागमण्डल विधान, ध्वजारोहण, अंकुरारोपण, पंचकल्याणक आदि समस्त विधियों का 18 अध्यायों में विस्तृत वर्णन है तथा इसमें प्रतिष्ठा की विस्तार सहित वृहत्, मध्यम एवं संक्षिप्त विधि भी बताई गई है।

इस ग्रंथ में जिनबिंबों की प्रतिष्ठा के साथ-साथ आचार्य-उपाध्याय-साधु की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठाविधि, श्रुतदेवता (सरस्वतीदेवी), श्रुतस्कंध, जिनशासन यक्ष-यक्षी आदि की प्रतिष्ठाविधि भी अलग से वर्णित है। इससे सिद्ध होता है कि इनकी मान्यताएँ भी प्राचीन काल से थीं। आज कुछ लोग आचार्यादि की प्रतिमा का विरोध करते हैं किन्तु जहाँ इस ग्रंथ में इनकी प्रतिष्ठा विधि बताई है, वहीं देवगढ़, खजुराहो, मांगीतुंगी पर्वत आदि तीर्थों पर उत्कीर्ण इनकी प्राचीन मूर्तियाँ देखने को मिलती हैं। अतः यदि आचार्य धरसेन, कुंदकुंद आदि प्राचीन आचार्य एवं चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर, आचार्यश्री वीरसागर आदि मुनि महाराजों की प्रतिमाएँ बनाकर उनकी विधिवत् प्रतिष्ठा करके पूज्य बनाया जाता है तो कोई दोष नहीं प्रतीत होता है। इसी प्रकार शासन देवी-देवताओं की प्रतिष्ठा भी प्राचीन पद्धति के अनुसार शास्त्रोक्त है और लगभग सभी प्राचीन मंदिरों में क्षेत्रपाल, धरणेन्द्र-पद्मावती, चक्रेश्वरी, अम्बिका, ज्वालामालिनी आदि देव-देवियों की प्रतिमाएँ देखी जाती हैं। वर्तमान में दिगम्बर जैन समाज में बीसपंथ और तेरहपंथ के नाम से दो परम्पराएँ प्रचलित हैं। उनमें से प्राचीन परम्परानुसार पंचामृत अभिषेक, स्त्रियों द्वारा अभिषेक, पूजन में फल-फूल-नैवेद्य-दीप-धूप आदि चढ़ाने वालों को एवं शासन देव-देवी का अस्तित्व मानने

वालों को बीसपंथी आम्नाय की मान्यता वाला कहा जाता है तथा लगभग 300 वर्षों से उत्तरभारत के कतिपय विद्वान् पण्डितों द्वारा बनाए गए 13 नियमों का पालन करने वालों को तेरहपंथी कह दिया गया है किन्तु प्राचीन आगम ग्रंथों में तेरह पंथ-बीसपंथ का कोई नामोनिशान भी नहीं है एवं वर्तमान में भी तेरहपंथी मंदिरों में से प्रायः अधिक मंदिरों में अंबिका देवी, पद्मावती-क्षेत्रपाल आदि की प्रतिमाएँ आज भी विराजमान हैं। जो भी हो, यहाँ यह विशेष ध्यान देने योग्य है कि यह भेद-भिन्नता मात्र श्रावकों की पूजा पद्धति में तो है किन्तु पूरे दिगम्बर जैन समाज में अन्य कोई सैद्धान्तिक मतभेद नहीं है इसीलिए दोनों परम्परा के लोग मिल-जुलकर दक्षिण-उत्तर का सेतुबंध बनाये रखकर बड़े-बड़े उत्सव-महोत्सवों को सम्पन्न करते रहते हैं। वर्तमान के उदारमना मस्तिष्क वाले युग में सभी को पक्षव्युग्राह की संकीर्ण मान्यताएँ छोड़कर जहाँ जैसी परम्परा पुरातन से चली आ रही है उसी के अनुसार आचरण करना चाहिए। विशेषरूप से दिगम्बर जैन तीर्थों पर बीसपंथ और तेरहपंथ दोनों परम्पराओं का समन्वय रखना चाहिए, क्योंकि तीर्थ किसी की अधिकृत सम्पत्ति न होकर वे प्रत्येक दिगम्बर जैन की श्रद्धा के केन्द्र होते हैं।

पूजा विधि-मंत्र अनुष्ठान आदि के संबंध में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रतिष्ठाचार्य एवं यजमान की पिण्डशुद्धि, मंत्रशुद्धि, अनुष्ठान पद्धति, अनुशासनबद्धता, अणुव्रत पालन की क्षमता आदि जितनी प्रबल होती है, उतना ही अधिक चमत्कार प्रतिमाओं में आता है, पूजा-विधान का फल भी उसी प्रकार से भौतिक सुख की प्राप्ति आदि रूप प्राप्त होता है तथा क्रम से आध्यात्मिक आनंद की अनुभूति करते हुए मोक्ष की परम्परा भी साकार होती है। ''प्रतिष्ठातिलक'' ग्रंथ में इन सभी शास्त्रीय विधियों का समावेश है इसीलिए इसमें वर्णित पूरी विधि के अनुसार भगवन्तों की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करने से प्रतिष्ठेय प्रतिमाओं में विशेष चमत्कार प्रगट होता है।

इसमें कुल अठारह परिच्छेद हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है–

1. प्रथम परिच्छेद में नांदीमंगल विधानरूप प्रारंभिक विधि का वर्णन है। उसके अंतर्गत प्रतिष्ठा के प्रकार, प्रतिष्ठाचार्य का लक्षण, पूजामुखविधि, सकलीकरण, अभिषेकविधि आदि के वर्णन के साथ-साथ धर्माचार्य की अर्चना, श्रीबलि आदि को बताया है। यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य यह है कि ''प्रतिष्ठाचार्य'' को ''इन्द्र'' शब्द से तथा यजमान को ''प्रतीन्द्र'' संज्ञा से इंगित किया गया है किन्तु वर्तमान में प्रतिष्ठाचार्य, यज्ञनायक, सौधर्मादि 12 इन्द्रों की प्रमुखता प्रतिष्ठाओं में रहती है।

2. द्वितीय परिच्छेद में अंकुरारोपण विधि का वर्णन है जो प्रत्येक विधि-विधान एवं पंचकल्याणकों के प्रारंभ में की जाती है। इस ग्रंथानुसार यद्यपि

अंकुरारोपण करने का निर्देश प्रारंभ में ही कर दिया है किन्तु वर्तमान में प्रायः सभी जगह झण्डारोहण के बाद अंकुरारोपण करने की परम्परा है।

3. तृतीय परिच्छेद में शांतिहोम विधान है, इसके अन्तर्गत होम का मण्डप एवं हवन कुण्डों के लक्षण आदि का विस्तृत वर्णन है।

4. चतुर्थ परिच्छेद में मण्डप विधान, वेदी निर्माण, यज्ञशाला आदि का वर्णन करते हुए नवग्रह पूजा विधि बताई है कि कौन से ग्रह की शांति हेतु किस प्रकार की समिधा (लकड़ी) से आहुति देनी चाहिए।

5. पंचम परिच्छेद में ध्वजारोहण विधि को विस्तार से प्रयोगात्मकरूप में बताया है। इसमें सर्वाण्ह यक्ष का स्वरूप बताकर उन्हें ध्वजदेवता के रूप में माना गया है और इसमें दश दिक्पाल पूजन, अष्ट दिक्कन्यका पूजन एवं दश प्रकार की ध्वजाओं कीपूजा का वर्णन है। इस विधि का पूर्ण परिपालन करने से धर्म की ध्वजा तो आकाशकी ऊँचाईयों का स्पर्श करती ही है, साथ ही ध्वजारोहण करने वाले यजमान की कीर्तिध्वजा भी संसार में लहराने लगती है। पुनः इसी में भेरीताड़न विधि का वर्णन है। इसका रहस्य यह है कि पंचकल्याणक जैसा महान विश्वशांति महायज्ञ करने से पहले पूरे नगरमें विधिपूर्वक सभी सहधर्मियों को भेरी आदि बजाते हुए सूचित करना कि आपसभी इस यज्ञ में भाग लेकर जीवन सार्थक कीजिए। समाज को सूचित करने के साथ-साथ इस विधि द्वारा देवी-देवताओं को मंत्रपूर्वक बुलाकर उन्हें यज्ञपर्यन्त सर्वतोमुखीरक्षा का कार्यभार सौंपा जाता है जिससे कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होता है।

6. छठे परिच्छेद में घटयात्रा विधि से जल लाकर मंत्रित करना एवं उपवास ग्रहण विधि आदि हैं जो कि अनुष्ठानपर्यंत एक बार भोजन आदि नियम होते हैं।

7. सातवें परिच्छेद में "यागमण्डल विधान" विस्तृतरूप में है। प्रत्येक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में गर्भकल्याणक से पहले एक या दो दिन में इस "यागमण्डल विधान" को यज्ञनायक आदि के द्वारा सम्पन्न कराया जाता है। इस यागमण्डल विधान को पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने चूँकि हिन्दी में बना दिया है और वह जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर से प्रकाशित भी हो चुका है, अतः प्रायः प्रतिष्ठाचार्य लोग उसी हिन्दी पुस्तक से यागमण्डल कराते हैं।

वर्तमान में कुछ तेरहपंथी पंडित इस यागमण्डल में से सभी देवी-देवताओं की अर्चना हटाकर इसे बिल्कुल सारहीन बना देते हैं इसीलिए प्रतिष्ठा के कार्यों में निर्विघ्नता एवं अतिशय का संदेह बना रहता है। प्रतिष्ठाचार्यों को इस विषय में निष्पक्षरूप से सम्पूर्ण विधि सम्पन्न करानी चाहिए क्योंकि प्रतिष्ठा में चमत्कार तो प्रतिष्ठाविधि से ही आता है अतः इन प्रकरणों में अपनी व्यक्तिगत एवं प्रान्तीय मान्यता को छोड़कर प्राचीन आगम परम्परा का निर्वाह करना ही विद्वज्जनों के लिए

श्रेष्ठ प्रतीत होता है। पूज्य माताजी कई बार बताती हैं कि मेरे दीक्षागुरु आचार्यश्री वीरसागर महाराज कहा करते थे कि "मेरा सो खरा" नहीं बल्कि "खरा सो मेरा" की नीति हमें अपनानी चाहिए अर्थात् अपनी निजी मान्यता मिथ्या भी हो सकती है किन्तु जो शास्त्रीय सम्यक् मान्यता है वह कभी मिथ्या नहीं हो सकती है। वे आचार्यश्री इस प्रतिष्ठातिलक को अत्यधिक प्रामाणिक मानते थे।

8. आगे के आठवें परिच्छेद से पंचकल्याणक की सम्पूर्ण विधि प्रारंभ हो जाती है उसमें से सर्वप्रथम गर्भकल्याणक की पूरी विधि इस अध्याय में कही गई है। इसमें सौधर्म इन्द्र-इन्द्राणी, कुबेर आदि पदों को ग्रहण करने वाले श्रावक-श्राविकाओं को प्रतिष्ठाचार्य जी सकलीकरण, यज्ञदीक्षा विधि से शुद्ध करके स्थापना निक्षेप से वास्तविक इन्द्र-इन्द्राणी बना देते हैं, पुनः उन्हें प्रतिष्ठाकाल तक सूतक-पातक आदि नहीं लगता है।

इस गर्भकल्याणक महोत्सव को अंतरिम विधि और बाह्य नाटक मंचन विधि इन दो रूपों में सम्पन्न किया जाता है। वर्तमान में प्रायः परम्परा है कि तीर्थंकर माताके सोलह स्वप्न आदि के अनन्तर देर रात्रि में प्रतिष्ठाचार्य विद्वान् संक्षेप में अंतरिम विधिको सम्पन्न कर देते हैं किन्तु पूज्य माताजी इसी विधि को सर्वाधिक महत्त्व देती हैं इसीलिए उनका कहना है कि एक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में कम से कम दो-तीन विद्वान् प्रतिष्ठाचार्य अवश्य होना चाहिए, उनमें से ही एक प्रतिष्ठाचार्य सभी यजमानों को दिन में बुलाकर उनसे गर्भकल्याणक की पूरी शास्त्रीय विधि सम्पन्न करावें।

इस विधि में एक बड़े मटके को रखकर उसकी सजावट आदि करके उसमें जिनमाता की स्थापनापूर्वक संपूर्ण विधि उनमें और उनके समक्ष करने का विधान है। इसे सम्पन्न करने में लगभग 3-4 घंटे का समय तो लगता है किन्तु विधि करने वाले यज्ञनायक और सौधर्म इन्द्रादिक का मन गद्गद हो जाता है, वे ऐसा अनुभव करने लगते हैं कि हमने मानों साक्षात् ही भगवान जिनेन्द्र के गर्भकल्याणक का उत्सव मना लिया है। प्रतिष्ठा में जो माता-पिता, कुबेर, अष्टदिक्कुमारी आदि की भूमिका निभाने वाले पात्र हों, उन्हें भी इस विधि में सम्मिलित करके इन्द्र के द्वारा सम्मानित कराया जाना चाहिए।

कोई प्रतिष्ठाचार्य माता-पिता बनाने का निषेध करते हुए मात्र अंतरिम विधि के अनुसार मटके में स्थापित माता में ही पूरी विधि करते हैं किन्तु वसुविन्दु आदि कतिपय प्रतिष्ठापाठों में वर्णन आया है कि पतिव्रता कुलांगना में भी माता की स्थापना करना चाहिए। जैसा कि वसुविन्दु प्रतिष्ठा पाठ में स्पष्ट उल्लेख है कि–

अंबा सर्वाः सवित्र्यस्त्रिजगदधिपतिप्राप्तपूजाधिकारा।
अत्रागत्याध्वरोर्व्यां यजनकृतमिह स्वादरेण वृणन्तु।।

अध्वर्यूपत्निका वा धृततनुकुलयोर्दोषहीनां प्रकल्प्य।
वादित्रोद्घोषपूर्वं विहितयमदमां भूषयेत्पुण्यमूर्तिम्।।178।।
कदाचिदेषा न भवेद्गुणाढ्या, मंजूषिकां कल्पतु मातृकार्ये।
एवं चतुर्विंशतिजिनप्रसूनां, नामानि पुण्यानि कृती बहेत।।179।।

अर्थ–इन्द्रों से जिन्होंने पूजा का अधिकार–पात्रता प्राप्त की है, ऐसी तीर्थंकरों की जननी सभी अंबा–माताओं!

यहाँ आकर इस प्रतिष्ठायज्ञ की भूमि में आदरपूर्वक पूजा को स्वीकार करो।

जो शरीर से, कुल से दोषहीन हैं–सर्वांगपरिपूर्ण एवं कुल से शुद्ध हैं तथा जो यम और दम–इंद्रिय निग्रह से परिपूर्ण हैं, पुण्य की मूर्तिस्वरूप हैं ऐसी कुलांगना में वाद्य बजाते हुए घोषणापूर्वक उनमें तीर्थंकर माता की कल्पना करो।।178।।

कदाचित् ऐसी गुणों से समन्वित महिला नहीं मिलें तो माता के कार्य-विधि को करने के लिए मंजूषा–पेटी में माता की कल्पना करो। इस प्रकार 24 तीर्थंकरों की माताओं के नामों का उच्चारण करके विद्वान् पूजा करें।।179।।

इससे विपरीत कुछ दिन पूर्व एक प्रतिष्ठा में देखा गया कि पांडाल के मंच पर प्रसूतिगृह के बाजू में एक स्थान बनाकर उसमें माता-पिता बनने वाले दम्पत्ति को 2-4 दिन शयन कराया गया। इस विषय में प्रश्न करने पर उत्तर मिला कि दाम्पत्य जीवन बिताये बिना संतान की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? किन्तु ये सब बातें शास्त्रीय दृष्टि से निराधार हैं। इसमें पारम्परिक समाधान यही है कि मटके में माता का संकल्प करके सम्पूर्ण विधि सम्पन्न करें और मंच के बाह्य दृश्यों के प्रदर्शन हेतु जाति-कुल की शुद्धि वाले अणुव्रती दम्पत्ति को माता-पिता बनावें। इससे उनके भावों में तीर्थंकर पुत्र उत्पन्न करने जैसी ही पवित्र भावनाएँ उत्पन्न होती हैं एवं इस निमित्त से वे अगले भव में भगवान के साक्षात् माता-पिता बनने का सौभाग्य भी प्राप्त कर सकते है किन्तु प्रतिष्ठा मंच पर उनके शयन का स्थान बनाना शोभास्पद नहीं लगता है क्योंकि संयमीजीवन के अभिलाषी को राग के नये बंधन में नहीं बांधना चाहिए। इन विषयों में सभी प्रतिष्ठाचार्यों को सम्मेलन करके एकमत होना चाहिए अन्यथा समाज में जितने प्रतिष्ठाचार्य, उतने मत और उतने प्रकार की विधि को देखकर जनता गुमराह हो जाती है।

इसी प्रकार प्रतिष्ठा विधि सम्पन्न करने वाले इन्द्र-इन्द्राणियों के यज्ञदीक्षा में कंकण बंधन की विधि में भी आजकल काफी भिन्नता देखी जा रही है कि कुछ प्रतिष्ठाचार्य विद्वान् स्त्री-पुरुष दोनों के दाहिने हाथ में कंकण बांधते हैं औरकुछ स्त्रियों के बाएँ हाथ में कंकण बांधते हैं। इस विषय में शास्त्रोक्त विधि के अनुसार महिलाओं के बाएँ हाथ में ही कंकण बांधने की प्राचीन परम्परा है अतः उसे ही अपनाना चाहिए।

इस आठवें परिच्छेद के अन्दर गर्भावतार कल्याणक की जलाधिवासन आदि विधि से विधिनायक प्रतिमा एवं अन्य प्रतिष्ठेय प्रतिमाओं की शुद्धि करने का प्रयोगात्मक वर्णन है।

9. नवमें परिच्छेद में जन्मकल्याणक की विधि करके जिनेन्द्र शिशु का पांडुकशिला पर जन्माभिषेक एवं शृंगार करके पालना झुलाने आदि की तो बाह्य विधि है ही, साथ ही 117 कलशों से जो आकारशुद्धि करने की विधि है वह विशेष दृष्टव्य है। क्योंकि अनेक प्रकार के पत्ते, भस्म आदि के चूर्ण जल में डालकर अलग-अलग कलशों से जो प्रतिमाओं की आकारशुद्धि की जाती है उससे प्रतिमाओं में पवित्रता एवं पूज्यता आती है।

10. दशवें परिच्छेद में दीक्षाकल्याणक के अंतर्गत लौकांतिक देवों द्वारा स्तुति, भगवान का वनगमन, केशलोंच, दीक्षा ग्रहण करके योगलीन होते ही चार ज्ञानधारी बन जाने आदि का वर्णन है।

इसमें यह विशेष जानना चाहिए कि भगवान चूँकि स्वयं ''नमः सिद्धं'' कहकर दीक्षा ग्रहण करते हैं अतः उन्हें कोई आचार्य, मुनि आदि दीक्षा तो दे ही नहीं सकते। केवल प्रतिष्ठाविधि में वर्णित दीक्षाकल्याणक मंत्रों द्वारा उनके दाएँ हाथ की ओर पिच्छी और बाएँ हाथ के पास कमंडलु स्थापित करना चाहिए।

इस दीक्षा विधि के बाद तीर्थंकर भगवान के नाम के साथ 'सागर' (जैसे-आदिनाथ को आदिसागर या शांतिनाथ को शांतिसागर) शब्द न लगाकर केवल तीर्थंकर महामुनि आदिनाथ तथा शांतिनाथ आदि बोलकर ही जयकारा लगाना चाहिए। इसी प्रकार बाल्यावस्था में भी भगवान को ऋषभ कुमार कहकर संबोधित नहीं करना चाहिए क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर जन्म लेने वाले महापुरुष प्रत्येक अवस्था में भगवान ही कहलाते हैं।

11. ग्यारहवें परिच्छेद में केवलज्ञान कल्याणक के अंतर्गत प्रतिमाओं पर केशर से अंकन्यास, तिलकदान, प्राणप्रतिष्ठा का वर्णन है। प्रतिष्ठातिलक में इस कल्याणक को ''प्रतिष्ठादिवस'' संज्ञा दी है क्योंकि इसी दिन सब प्रतिमाएँ प्राणप्रतिष्ठापूर्वक प्रतिष्ठित हो जाती हैं। इसमें वर्णित तिलकदान विधि का कहीं-कहीं बड़ा विकृतरूप देखा गया है कि यजमान श्रावकगण प्रतिष्ठाचार्य को तिलक करके उन्हें भेंट देने लगते हैं जबकि घिसी हुई मंत्रित केशर आदि को प्रतिमाओं की नाभि में स्वर्णशलाका से मंत्रपूर्वक रखकर जो तिलकदान विधि होती है उसी से प्रतिमा में प्राणों की स्थापना होती है। इस प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ में कहीं भी सूरिमंत्र का कोई निर्देश नहीं है, फिर भी वर्तमान में पारम्परिक प्रतिष्ठाचार्यों से प्राप्त सूरिमंत्र और प्राण प्रतिष्ठा मंत्र परिशिष्ट में दे दिये गये हैं।

12. बारहवें परिच्छेद में निर्वाणकल्याणक की पूरी विधि है पुनः प्रतिमाओं को यथास्थान विराजमान करके मंदिर के शिखर पर कलशारोहण, ध्वजस्थापन किया जाता है।

13. आगे क्रमप्राप्त तेरहवें परिच्छेद में महोत्सव सम्पन्न होने के बाद सभी प्रतिमाओं के 1008 कलशों से महाभिषेक करने की विधि है।

14. चौदहवें परिच्छेद में 11 प्रकार की कुंभन्यास विधि है।

15-16. पन्द्रहवें एवं सोलहवें परिच्छेद में मध्यम प्रतिष्ठाविधि एवं संक्षेप प्रतिष्ठाविधि दी गई है।

17. सत्रहवें परिच्छेद में सिद्धप्रतिमा प्रतिष्ठाविधि के साथ-साथ आचार्य-उपाध्याय-साधु प्रतिमाओं की पृथक् प्रतिष्ठाविधि, श्रुतदेवता (सरस्वती प्रतिमा) की प्रतिष्ठा विधि, श्रुतस्कंध यंत्र, सिद्धचक्र यंत्र आदि की प्रतिष्ठा विधि तथा यक्ष-यक्षी प्रतिमाओं की भी प्रतिष्ठाविधि इसमें वर्णित है। इससे इन सबकी प्रामाणिकता को अवश्यमेव स्वीकार करना चाहिए।

18. अंत में अठारहवें परिच्छेद में उत्सवों का वर्णन करते हुए कवि के वंश का परिचय तथा ग्रंथकर्ता का परिचय दिया है। इस प्रकार अठारह अध्यायों में निबद्ध यह प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ सभी पूर्वाचार्यों द्वारा मान्य है।

यह प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ श्रीनेमिचंद्र सैद्धान्तिक देव की संग्रहीत रचना है। जैसा कि उन्होंने स्वयं इसमें कहा है–

इदं प्रतिष्ठा शास्त्रौघप्रधानमिति युज्यते।
तत्सारसंग्रहात्मत्वाद्गन्धानां गंधयोगवत्।।

अर्थात् जैसे सभी सुगंधित पदार्थों को एकत्रित करके उनमें से निकाला गया अर्क अतिसुगंधित होता है, वैसे ही यह प्रतिष्ठापाठ भी सर्व प्रतिष्ठापाठों में प्रधानता को प्राप्त होता है। इतना ही नहीं, इसमें तो यह भी कहा है कि **''प्रतिष्ठानां प्रधानत्वात् प्रतिष्ठातिलकं मतम्''** अर्थात् यह सर्व प्रतिष्ठापाठों में प्रधान है, क्योंकि इसमें सभी प्रतिष्ठाओं का विस्तार से विवेचन किया गया है इसीलिए इसका 'प्रतिष्ठातिलक' नाम सार्थक है।

इन नेमिचंद्र सैद्धान्तिक देव के बारे में कुछ विद्वानों का मत है कि आप मुनि थे। उनके अनुसार नेमिचंद्र नाम के तीन आचार्य मुनिराज हुए हैं उनमें से प्रथम नेमिचंद्राचार्य ईसवी सन् 556-565 के मध्य हुए, जो श्रीमद्प्रभाचन्द्राचार्य के शिष्य व श्रीमद् भानुचंद्राचार्य के गुरु थे।

द्वितीय नेमिचंद्र आचार्य ईसवी सन् 981 के लगभग माने गये हैं, ये श्री अभयचंद्राचार्य के शिष्य एवं चामुण्डराय मंत्री के गुरु थे। ये ''सिद्धान्तचक्रवर्ती''

की पदवी से समन्वित थे। इन्होंने गोम्मटसार जीवकांड, कर्मकांड, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार आदि करणानुयोग ग्रंथों की रचना करके सिद्धांतचक्रवर्ती का पद सार्थक किया था। इनके सानिध्य में सम्पन्न हुई श्रवणबेलगोला की भगवान बाहुबली प्रतिमा की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का प्रमुख उल्लेख प्राप्त होता है।

इसके पश्चात् तृतीय आचार्य प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ के रचयिता नेमिचंद्र सैद्धांतिक देव के नाम से माने गये हैं। इनका समय ईसवी सन् 1050-68 का माना गया है। आप महान तार्किक तथा दिग्गज तो थे ही, इसके साथ ही इसी प्रतिष्ठातिलक के अंत में ग्रंथकर्ता की प्रशस्ति में लिखा है–

पलायध्वं पलायध्वं, रे रे तार्किकदिग्गजाः।
नेमिचन्द्रः समायातः, स्याद्वादवनकेसरी।।

अर्थात् आप स्याद्वादरूपी वन के केसरी (सिंह) थे तथा आपकी कीर्ति जगत् में चहुँओर व्याप्त थी। आपके नाममात्र से ही एकांतवादी पलायमान कर जाते थे– भाग जाते थे।

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने सन् 1954-55 तथा 1965 में दक्षिण भारत के प्रवास में सभी स्थानों पर इसी ग्रंथ के आधार से प्रतिष्ठाएँ सम्पन्न होती देखी हैं। दक्षिण के प्रतिष्ठाचार्य इस ग्रंथ के संस्कृत श्लोकों का उच्चारण बहुत ही शुद्ध और सौष्ठवपूर्ण भाषा में करते हैं इसलिए प्रतिष्ठा की गरिमा में चार चाँद लगते हैं, श्रोतागण उन कर्णप्रिय छन्दों को सुनते हुए मंत्रमुग्ध होकर असीम प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

इस ''प्रतिष्ठातिलक'' ग्रंथ को प्रतिष्ठाचार्य विद्वान् निर्मत्सर भाव से पढ़कर प्रयोग में लावें, यही हमारे कथन का अभिप्राय है।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का शुभारंभ झण्डारोहण के साथ होता है अतः यहाँ प्रसंगोपात्त ध्वजा के संबंध में शास्त्रीय प्रमाण और वर्तमान प्रचलित परम्परा के संबंध में विषय का प्रस्तुतीकरण किया जाता है–

जैनशासन में ध्वज परम्परा

प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ के पंचम परिच्छेद में देखें– **''अथ ध्वजारोहण विधिः''** नामक ॐ सर्वद्रव्यपर्यायविषयवैशद्यपराकाष्ठाधिष्ठितकेवलज्ञाननिष्ठपरमेष्ठिप्रतिष्ठादिवसात् षष्ठेऽहनि बृहच्छान्तिकयागमंडलाराधनां समासतः समापूर्य पंचदशाद्यंतवितस्तिरूपषड्विधदैर्घ्यान्तमदैर्घ्यस्य, एकोनविंशत्यंगुलादिचतुर्विंशत्यंगुलांतषड्विधव्यासान्यतमव्यासस्य, पदोनतद्व्याससमदैर्घ्य-सरज्जुपार्श्वमूलाग्र पौष्टिकक्रमहानिरूपकफुल्लिकालंकृतशिखोपलक्षितस्य, शिखासमाभ्यंतरं मूलाग्रपौष्टिवक्रमहानिरूपपादद्वयविराजितस्य, अष्टत्रयोदशाद्यंतयवव्यासकदलिच्छेदकलितशिखापादवर्जितपार्श्वस्य, शिखापादविस्तारतिर्यग्गूढेषिकाभूषितस्य, शिखामूलैषिकामध्यघटितरज्जुबंधस्य, हटद्धाटकघंटिकाफुल्लिकासमुल्लसितस्यसुधौतसुश्लिष्टश्वेतनूतनवासः परिकल्पितस्यास्य ध्वजस्य, ध्वजमस्तकाधः प्रथमे पदे छत्रत्रयं, द्वितीये पदे जिननाथपद्मयानप्रदर्शकं पद्मवाहनं, तृतीये पूर्णकलशं, तत्पार्श्वयोः स्वस्तिकं, स्वस्तिकचूलिकायाः पार्श्वद्वये दीपदंडद्वयमुज्वलज्ज्वालकं, चतुर्थे श्वेतातपत्रं, तदुभयपार्श्वयोः कुंदेंदुविशदचारुचामरद्वयं, पंचमे पदे छत्रं, तस्याधःप्रदेशे तत्र विलिखितध्वजे वा श्वेतगजपृष्ठच्याधिष्ठितमिंद्रनीलप्रभमधः करद्वयरचितांजलिं, ऊर्ध्वकरद्वयधृतधर्मचक्रं, जिनबिंबेद्धमूर्धानं एकछत्रसमन्वितं अनेकालंकारालंकृतसर्वाण्हयक्षम्, तत्पार्श्वयोर्दीपदंडचामरस्वस्तिकानि यथाशोभं शिल्पिना विलिख्य **तदेतन्महाध्वजं** तद्यागमंडलस्याग्रतो वेदिकातले पूर्वस्यां दिशि समवस्थाप्य, हस्तद्वयोदयहस्तविस्तारप्रमितान् शिखापादकदलिच्छेदफुल्लिकाशोभितान्, **दिक्पालकेतून्** तथा विधानेन मंगलार्घ्यकर**दिक्कन्यकाकेतून्**, एकहस्तोदयहस्तार्धव्यासशिखाद्यलंकृत मालामृगेन्द्राद्यंकित**पंचवर्ण केतून् तद्ध्वजपार्श्वयोरवस्थाप्य**, यक्षादि सर्वध्वजदेवानां आवाहनस्थापनसन्निधापनानि समंत्रं विधाय। तन्महाध्वजाग्रतः सर्वौषधिमिश्रतीर्थोदकपूर्णामृतमंत्राभिमंत्रितनवकलशान् गंधाक्षतपुष्पफलादीन् मंगलोपकरणानि निधाय। दर्पणप्रतिबिंबितानां सर्वाण्हयक्षादिध्वजदेवतानां तज्जलेन संप्रोक्षणमनुलेपनं विधाय। मुखवस्त्रं दत्वा नयनोन्मीलनं सुलग्ने विरचय्याभ्यर्च्य विविधालंकारालंकृतानामेषां सर्वध्वजानां पुरि महोत्सवेन ह्मारमिदानीं विधातुमिमे वयमुत्सहामहे।।

इसका अभिप्राय यह है कि श्री जिनेन्द्रदेव के केवलज्ञान कल्याणक के छह दिवस पूर्व **''बृहत्शांतिक-यागमंडलाराधन विधि''** करके ध्वजारोहण करें। यह ध्वजा कैसी हो? इस विषय का वर्णन ध्वजा के चित्र में जो दिया है उसी में से समझना चाहिए। इस ध्वजा के दोनों तरफ लघुध्वजायें 28 होना चाहिए। यह महाध्वज यागमंडल के सामने और वेदी के नीचे होना चाहिए। महाध्वज के वस्त्र पर सर्वाण्हयक्ष की मूर्ति होना चाहिए। इस ध्वज के दोनों तरफ दिक्पाल और दिक्कन्याओं के लघुध्वज और माला, मृगेन्द्र आदि चिन्ह के पाँच वर्ण के लघु ध्वज रहते हैं।

इन सर्वध्वज देवताओं का आह्वानन-स्थापन-सन्निधीकरण मंत्र विधि से करें। पुनः ध्वजा के सन्मुख नव कलश स्थापित करें। उन कलशों में सर्वोषधि डालें, अमृतमंत्र से अभिमंत्रित जलयात्रा विधि से लाये गये तीर्थोदक– तीर्थ के जल को भरें। गंध, अक्षत, पुष्प, फल और मंगलद्रव्य, उपकरण आदि पास में रखकर महाध्वज के सामने बड़ा सा दर्पण स्थापित करें। उसमें सभी ध्वजाओं का प्रतिबिंब पड़ना चाहिए। उस दर्पण में बिंबित सर्वाण्हयक्ष आदि देवताओं का कलशों के जल से अभिषेक व अनुलेपन करें। तदनंतर मुखवस्त्र लगाकर (पर्दा डालकर) शुभलग्न में नयनोन्मीलन विधि करें और पूजा करें। अनंतर इस महाध्वज को सजाकर शहर में बड़े वैभव के साथ जुलूस निकालें।

इसमें विद्वज्जन् ध्यान दें कि घंटिका, फूल आदि से सुसज्जित **सुधौतसुश्लिष्टश्वेतनूतनवासः परिकल्पितस्यास्य ध्वजस्य....**का अर्थ है अच्छी प्रकार से धुला हुआ कोमल-चिकना सफेद नया वस्त्र महाध्वज के लिए प्रयोग करें। अनेक प्रकार के स्वस्तिक-दण्ड-चामर आदि चित्रों से समन्वित इस महाध्वज को यागमण्डल के आगे वेदिकातल की पूर्व दिशा में स्थापित करके पुनः महाध्वज के नीचे आजू-बाजू में (दोनों पार्श्वभागों में) माला, मृगेन्द्र आदि चिन्हों से अंकित पंचवर्ण की लघु ध्वजाएँ स्थापित करके यक्षादि सभी ध्वजदेवों के आह्वान का विधान है अर्थात् दश दिक्पाल की 10 ध्वजाएँ, आठ दिक्कन्याओं की 8 ध्वजाएँ और माला-मृगेन्द्र आदि दश चिन्हों से अंकित 10 ध्वजाएँ, इस प्रकार कुल 28 लघु ध्वजाएँ होती हैं। इस महाध्वजा का चित्र

प्रतिष्ठा-तिलक में इस प्रकार है–

इस प्रमाण से स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के प्रारंभ में सफेद महाध्वजा बनाकर ध्वजारोहण विधि सम्पन्न करना चाहिए किन्तु परम्परा में केशरिया ध्वज से ध्वजारोहण करने की परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है, कुछ विद्वान् सफेद ध्वजा से भी कराते हैं।

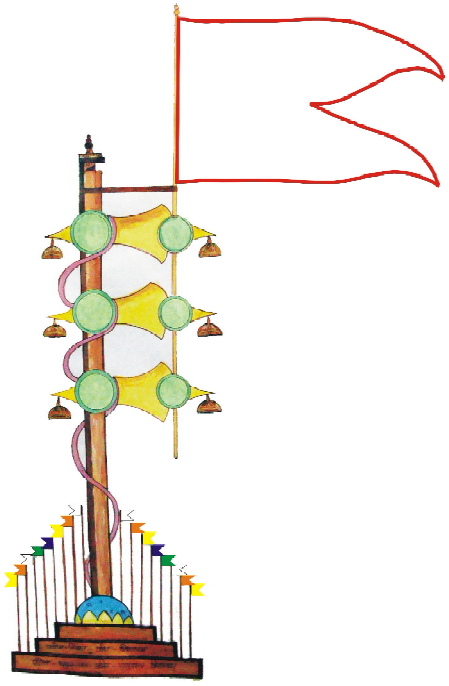

2. इसी प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ के पंचम परिच्छेद में **''भेरीताड़न विधेः प्रयोगः''** के अंतर्गत भेरीताड़न विधि में प्रतिष्ठा मंडप की दशों दिशाओं में अलग-अलग रंगों की दश ध्वजाएँ लगाने का विधान है। यथा–दश प्रकार के चिन्हों से सहित दश ध्वजाओं को क्रम से दश दिशाओं में स्थापित करें। इन दशचिन्हों के नाम– माला, सिंह, कमल, वस्त्र, गरुड़, हाथी, बैल, चकवा, मयूर और हंस। ये दशों ध्वजाएँ क्रम से पाँच वर्ण की मानी हैं।

उनके वर्ण–पीत, लाल, काली, हरी, श्वेत, नीली, काली, पंचवर्णी, पंचवर्णी और पंचवर्णी ऐसी ध्वजायें बनावें और क्रम से श्लोक व मंत्र बोलकर उन-उन दिशाओं में लगाते जावें।

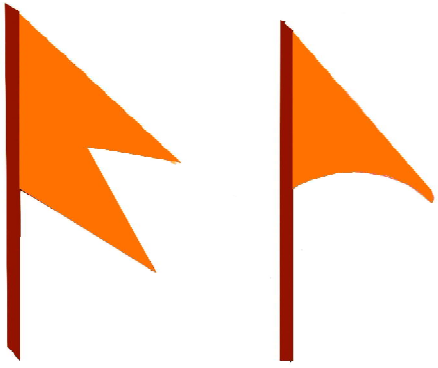

यहाँ अधो और ऊर्ध्व दिशा के लिए ईशान और पूर्व के बीच को अधो दिशा और नैऋत्य तथा पश्चिम दिशा के बीच की दिशा को ऊर्ध्व मानकर वहाँ-वहाँ लगाते हैं।

3. मंदिर वेदी प्रतिष्ठा-कलशारोहण विधि (पं. पन्नालालजी साहित्याचार्य-सागर द्वारा संपादित)

पुस्तक में भी ध्वजा के तीन आकार दिये हैं। यथा–

4. आज भी भारत के अधिकतम मंदिरों के शिखरों पर या तो रेशमी केशरिया ध्वज लहरा रहे हैं अथवा धातुनिर्मित स्थिर ध्वजा भी लगाने की वर्तमान में परम्परा चल रही है ।

उदाहरणस्वरूप हस्तिनापुर के प्राचीन दिगम्बर जैन मंदिर के ऊपर पीतल की ध्वजा लगी है वहाँ प्रायः सभी मंदिरों पर कहीं त्रिकोणाकार केशरिया ध्वजा है, कहीं द्वित्रिकोणाकार की ध्वजा है एवं कहीं कपड़े की केशरिया ध्वजा हैं।

प्राचीन दिगम्बर जैन मंदिर, हस्तिनापुर

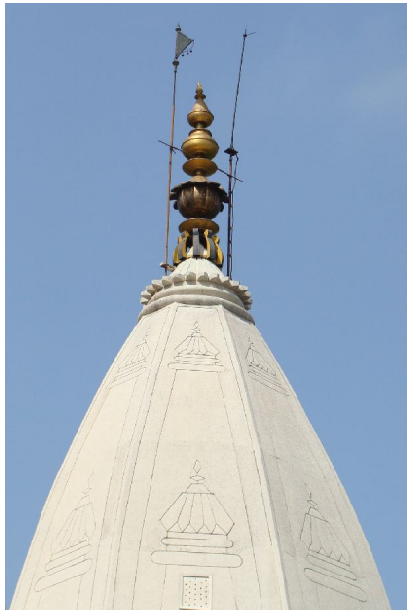

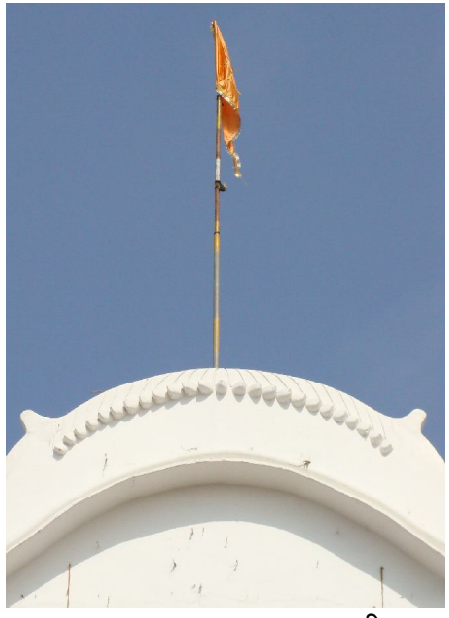

प्राचीन दिगम्बर जैन मंदिर, हस्तिनापुर

हस्तिनापुर के श्वेताम्बर मंदिरों पर लम्बी तीन पट्टी की ध्वजा है जिसमें बीच में सफेद और आजू-बाजू की पट्टी लाल है। ऐसी तीन पट्टी की लम्बी ध्वजा गुजरात में भी प्रायः सभी श्वेताम्बर मंदिरों में

देखी जाती हैं।

5. इन्दौर के एक सज्जन (राजकुमार जैन) ने बताया कि वहाँ कई मंदिरों पर लालरंग की आयताकार ध्वजा हैं ।

6. पहले बचपन में भी मैंने झण्डारोहण के समय विद्वानों को गीत गाते सुना है–

लहर लहर लहराए, केशरिया झण्डा जिनमत का.....हो जी.....हो जी...।

दूसरा गीत भी आपने इसी प्रकार सुना होगा–

स्वस्तिकमय केशरिया प्यारा, झण्डा ऊँचा रहे हमारा ।

7. पं. श्री गुलाबचन्द्र पुष्प-टीकमगढ़ द्वारा सम्पादित ''प्रतिष्ठा रत्नाकर'' ग्रंथ (जिसमें आचार्यश्री विमलसागर जी, आचार्य श्री विद्यानंद जी, आचार्य श्री कुंथुसागर, उपाध्यायश्री भरतसागर आदि के आशीर्वचन भी लिखे हैं) में पृ. 87 पर ध्वजगान है–

मंगलमय केशरिया प्यारा, झण्डा ऊँचा रहे हमारा।

8. इसी ग्रंथ में पृ. 93 पर वेदी का चित्र बना है उस पर भी लहराती हुई त्रिकोणाकार केशरिया ध्वजा ही बनी है। पृ. 303 के बाद रंगीन चित्रों में सर्वप्रथम

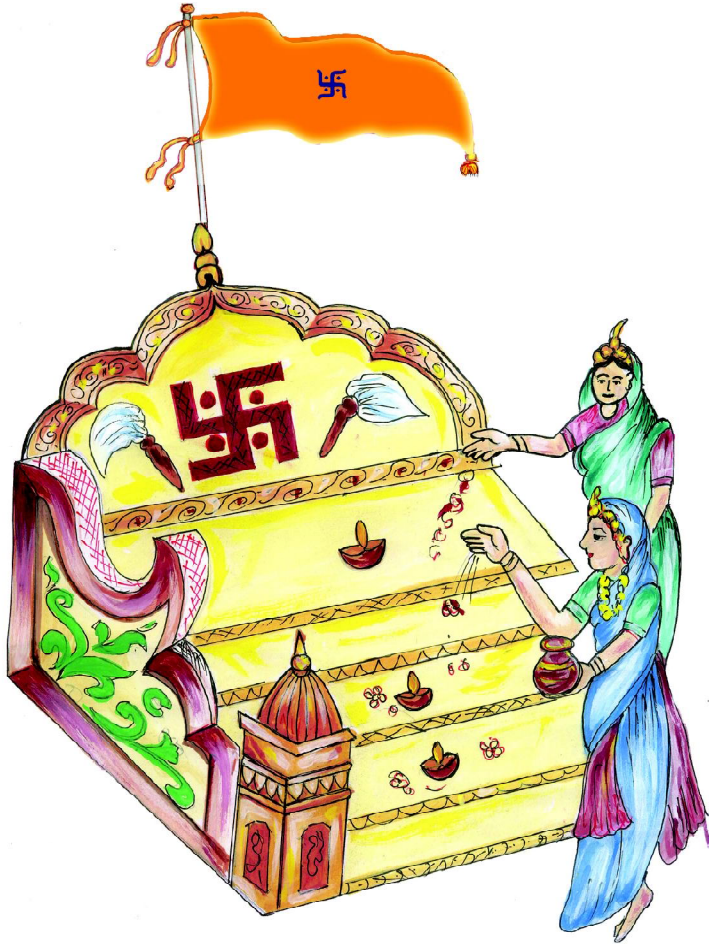

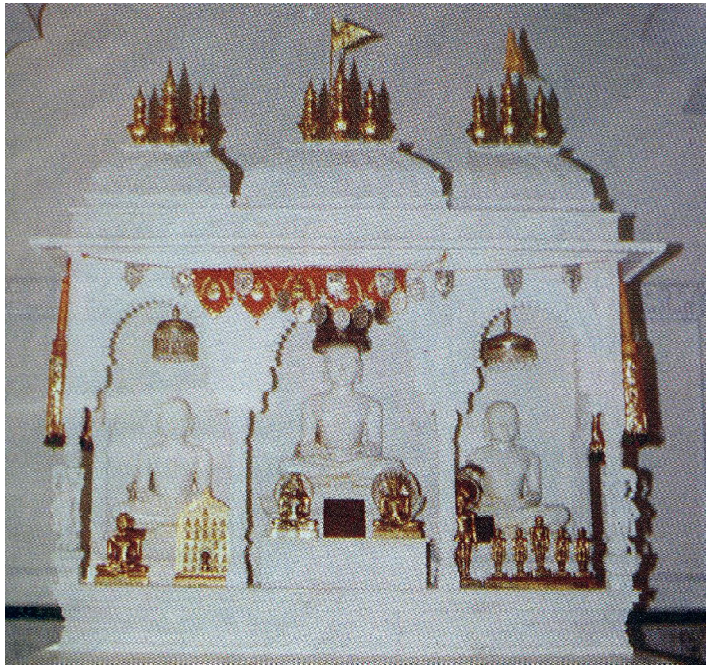

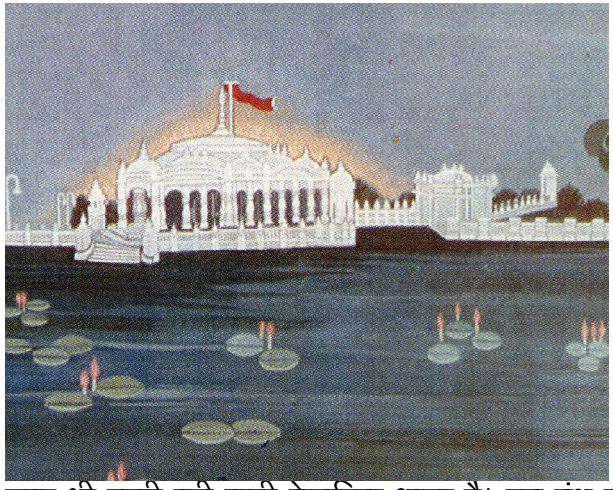

मंदिर की वेदी के चित्र में ऊपर त्रिकोणाकार केशरिया ध्वजा हैं। इन्हीं रंगीन चित्रों में पृष्ठ 305 पर जन्मकल्याणक के पृष्ठों से पूर्व मोक्ष कल्याणक के प्रतीक में पावापुरी का जलमंदिर है उसके ऊपर भी लम्बी पट्टी वाली केशरिया ध्वजा है। इस ग्रंथ को खोलते ही सर्वप्रथम अस्तर के दो पृष्ठों में ध्वजारोहण से लेकर पांचों कल्याणक के चित्र हैं उनमें ध्वजा त्रिकोणाकार एक रंग वाली ही है। ग्रंथ के अंत वाले अस्तर के 2 पृष्ठों में छपे गजरथ के चित्र में भी त्रिकोणी केशरिया ध्वजाएँ ही हैं।

9. पं. गुलाबचन्द पुष्प के संयोजकत्व में प्रकाशित "प्रतिष्ठा पराग" नामक पुस्तक के पृ. 71 पर प्रकाशित दो प्राचीन ध्वजगीत सभी के लिए दृष्टव्य हैं–

मंगलमय केशरिया प्यारा, झण्डा ऊँचा रहे हमारा।

लहर लहर लहराए, केशरिया झण्डा जिनमत का....हो जी....हो जी...।

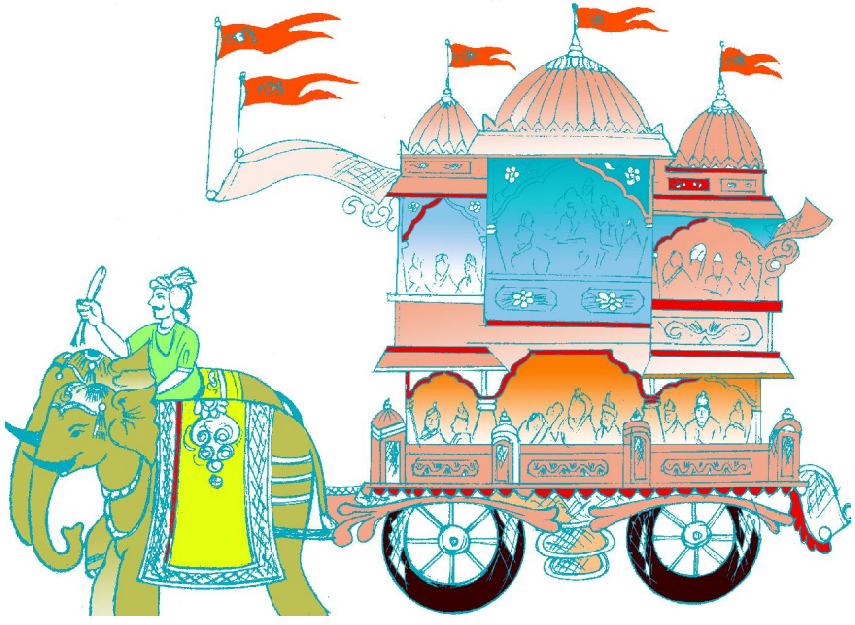

देश के विभिन्न प्रान्तों के मंदिरों की ध्वजाओं के जो वर्तमान प्रमाण प्राप्त हुए हैं उनमें सभी ध्वजाएँ केशरिया त्रिकोणाकार ही हैं। कतिपय तीर्थों के मंदिरों पर लहराती ध्वजाओं के चित्र यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं–

बोहरीबंद (म.प्र.)

प्रिय बन्धुओं! इस विषय में राग-द्वेष की भावनाओं से दूर होकर जिनधर्म की प्रभावना का प्रमुख लक्ष्य रखते हुए प्राचीन एवं अर्वाचीन दोनों परम्पराओं का निर्वाह करके श्वेत, केशरिया अथवा पंचरंगी ध्वजाओं से ध्वजारोहण करके एवं जिनमंदिरों पर ध्वजाओं को लहराकर विश्वशांति की मंगल भावना करना चाहिए तथा किसी पर छींटाकशी न करके अनेकांत मतानुसार जिनेन्द्रदेव के जिनमत की प्रभावना करना चाहिए क्योंकि सन् 1974 से पूर्व तो एकमत से पूरे देश की जैनसमाज

बीनाबरहा (म.प्र.)

लखनादौन (म.प्र.)

द्वारा केशरिया ध्वज ही फहराया जाता था और वर्तमान में 90 प्रतिशत स्थानों पर केशरिया एवं 10 प्रतिशत स्थानों पर केशरिया तथा पंचरंगी दोनों प्रकार की ध्वजाओं के चित्र प्राप्त हुए हैं।

सेरोन जी
(म.प्र.)

गोलाकोट
(म.प्र.)

सिहोनियां (म.प्र.)

थुवोन जी (म.प्र.)

पनागर (म.प्र.)

ऋषभदेव
केशरिया
जी (राज.)

ऋषभदेव
केशरिया
जी (राज.)

अथ मालामृगेन्द्रादिदशविधध्वजपूजनम्

–आर्याछन्दः –

मालाहरिकमलांबरगरुडेभगवेशचक्रशिखिहंसैः।
उपलक्षितध्वजानि न्यसामि दशदिक्षु पंचवर्णानि।।

पुष्पांजलिः ।। (पुष्पांजलि क्षेपण करें)

– अनुष्टुप्छन्दः –

पीतप्रभाव्हया देवी, पीतवर्णमिदं ध्वजं।
धृत्वा जयाय श्रीवेद्यां, पूर्वस्यां दिशि तिष्ठतु।।1।।

ॐ पीतप्रभायै स्वाहा ।। *(पूर्व दिशा में पीली ध्वजा लगावें)*

पद्माख्यदेवी पद्माभा, पद्मवर्णमिदं ध्वजम्।
धृत्वा जयाय श्रीवेद्यां, आग्नेय्यां दिशि तिष्ठतु।।2।।

ॐ पद्मायै स्वाहा।। *(आग्नेय दिशा में लाल ध्वजा लगावें)*

सा मेघमालिनी कृष्णा, कृष्णवर्णमिदं ध्वजं।
धृत्वा जयाय श्रीवेद्यां, अपाच्यां दिशि तिष्ठतु।।3।।

ॐ मेघमालिन्यै स्वाहा।। *(दक्षिण दिशा में काली ध्वजा लगावें)*

हरिन्मनोहरा देवी, हरिद्वर्णमिदं ध्वजं।
धृत्वा जयाय श्रीवेद्यां, नैऋत्यां दिशि तिष्ठतु।।4।।

ॐ मनोहरायै स्वाहा।। *(नैऋत्य दिशा में हरी ध्वजा लगावें)*

श्वेताभा चंद्रमालेयं, श्वेतवर्णमिदं ध्वजं।
धृत्वा जयाय श्रीवेद्यां, प्रतीच्यां दिशि तिष्ठतु।।5।।

ॐ चंद्रमालायै स्वाहा।। *(पश्चिम दिशा में सफेद ध्वजा लगावें)*

नीलाभा सुप्रभा देवी, नीलवर्णमिदं ध्वजं।
धृत्वा जयाय श्रीवेद्यां, वायव्यां दिशि तिष्ठतु।।6।।

ॐ सुप्रभायै स्वाहा।। *(वायव्य दिशा में नीली ध्वजा लगावें)*

श्यामप्रभा जयादेवी, श्यामवर्णमिदं ध्वजम्।
धृत्वा जयाय श्रीवेद्या-मुदीच्यां दिशि तिष्ठतु।।7।।

ॐ जयायै स्वाहा।। *(उत्तर दिशा में काली ध्वजा लगावें)*

विजया पंचवर्णाभा, पंचवर्णमिदं ध्वजम्।
धृत्वा जयाय श्रीवेद्यां, ईशान्यां दिशि तिष्ठतु।।8।।

ॐ विजयायै स्वाहा।। *(ईशान दिशा में पंचवर्णी ध्वजा लगावें)*

विजया पंचवर्णाभा, पंचवर्णमिदं ध्वजम् ।
धृत्वा जयाय श्रीवेद्या-मधरादिशि तिष्ठतु।।9।।

ॐ विजयायै स्वाहा।। *(अधो दिशा में पंचवर्णी ध्वजा लगावें)*

विजयापंचवर्णाभा, पंचवर्णमिदं ध्वजम् ।
धृत्वा जयाय श्रीवेद्या-मूर्ध्वायां दिशि तिष्ठतु।।10।।

ॐ व्यक्तांतरायै स्वाहा।। *(ऊर्ध्व दिशा में पंचवर्णी ध्वजा लगावें)*

।। (इति पंचवर्णपताकार्चनम्।। पंचवर्ण ध्वजार्चन विधि पूर्ण हुई)।।

यहाँ यह ध्यान देना है कि भेरीताड़न विधि का ध्वजारोहण कार्यक्रम से कोई सम्बन्ध ही नहीं है, उपर्युक्त भिन्न-भिन्न वर्ण की दश प्रकार की ध्वजाएँ तो प्रतिष्ठा मण्डप के चारों ओर विधिपूर्वक स्थापित की जाती हैं इन्हीं में पंचवर्ण की तीन ध्वजाएँ हैं इनके लिए और भिन्न-भिन्न वर्ण की ध्वजाओं के लिए **'पंचवर्णकेतून्'** शब्द वहाँ आया है। ये सभी ध्वजाएँ दश देवियों की कल्पना के साथ स्थापित की जाती हैं।

3. प्रतिष्ठा सारोद्धार ग्रंथ के पृ. 78 पर भी अलग-अलग वर्ण की आठ पताका स्थापित करने का विधान है, जिनका ध्वजारोहण वाले महाध्वज से कोई सम्बन्ध नहीं है। यथा–

पीता प्रभारुणा पद्मा, कृष्णाभा मेघमालिनी।
हरिन्मनोहरा श्वेता, चंद्रमालेंद्रनीलभा।।208।।
सुप्रभाख्या जया श्यामा, विजया पंचवर्णभा।
दिक्षु तिष्ठत्विमा देव्यः, सवर्णध्वजपाणयः।।209।।

इसी प्रतिष्ठा ग्रन्थ में (अध्याय-2, पृष्ठ-46 पर) श्लोक नं. 145 में यागमण्डल विधान के अंतर्गत मण्डल पर पंचचूर्ण स्थापित करने का श्लोक एवं मंत्र है, उसका भी ध्वजा के रंगों से कोई तात्पर्य नहीं है–

नागेंद्रार्थपते हरित्प्रभजपां भासासिताभप्रिया
युक्ता एत्य सवर्णचूर्णनिचयैः प्रीतेंद्रवेद्यामिव।

वेद्यां द्वित्रिचतुर्गुणाष्टदलयुक्पद्मं चतुर्धाश्चतुष्-
कोणं वर्तयतात्र मंडलमथो वज्राल्लिखेंद्राश्रिषु।।145।।

ॐ ह्रीं क्लीं श्वेतपीतहरितारुणकृष्णमणिचूर्णं स्थापयापि स्वाहा ।
चूर्णस्थापनमंत्रः।

तथा यहीं पर पंचचूर्ण अलग-अलग भी स्थापित करने के लिए पाँच श्लोक एवं मंत्र पृथक्-पृथक् भी हैं।

प्रतिष्ठा सारोद्धार के अध्याय 5 में पृ. 124 पर श्लोक नं. 50 से 78 तक पठनीय विषय है, जिनमें से निम्न श्लोक विशेष ध्यान देने योग्य हैं–

सितं रक्तं सितं पीतं, सितं कृष्णं पुनः पुनः।
यावत्प्रासाददीर्घत्वं, तावत्संघट्टयेत् क्रमात् ।।52।।

ध्वजा का कपड़ा सफेद, लाल, सफेद, पीला, सफेद, काला फिर इसी क्रम से रंग वाला तैयार करावे।

चंद्रार्धचंद्रमुक्तास्त्रक्किंकिणीतारकादिभिः ।
नाना सद्रूपयुग्मैश्च, चित्रैः पत्रैर्विचित्रयेत् ।।53।।

ध्वजा में चंद्रमा, माला, घंटियाँ, तारे इत्यादि अनेक चिन्ह बनाके चित्रित करें।

अधश्छत्रत्रयं मूर्धस्तस्याधः पद्मवाहनम् ।
तस्याधः कलशं पूर्णं पार्श्वयोः स्वस्तिकं लिखेत् ।।54।।
दीपदंडौ लिखेत्स्वस्ति शिखायाः पार्श्वयोस्तथा।
पार्श्वयोरातपत्रस्य श्वेतचामरयुग्मकम् ।।55।।
मूर्धाधो धवलच्छत्रे ध्वजे वा यक्षमालिखेत्।
श्यामं चतुर्भुजं हस्तयुग्मेन रचितांजलिम् ।।56।।
पराम्यां दधतं मूर्ध्नि धर्मचक्रमृजुस्थितम् ।
जिनबिबोर्धमूर्धाने ह्योकछत्रसमन्वितम् ।।57।।
दीपदंडादिसंयुक्तं नानालंकरणान्वितम् ।
हस्तिपृष्टसमारूढं सर्वज्ञाख्याममुं लिखेत् ।।58।।
अशोकाससननिर्यासचंपकाम्रकदंबकाः ।
पूगवंशादयोन्येपि दंडस्य भवभूरुहाः ।।59।।

कलश, साथिया, दीपदंड, छत्र, चमर, धर्मचक्र लिखकर ध्वजा के ऊपर जिनबिंब का आकार बनावें। उसमें एक छत्र लगावें। उस ध्वजा में अशोक, चंपा,

आम, कदंब, सुपारी, वंश आदि के वृक्ष चिन्हित करें।।54-59।।

सादाप्रायाममानार्धं त्रिभागं वा चतुर्थकम् ।
ध्वजदंडस्य मानं तद्यथाशोभं प्रकल्पयेत् ।।60।।

ध्वजा के दंडे का प्रमाण शोभा के अनुसार होना चाहिए।

प्रासादस्योर्ध्वतुर्यांशे वेदिका वेदिकस्थितम् ।
आधारं धनदंडस्य यथोक्तं परिकल्पयेत् ।।61।।

वह प्रमाण मंदिर की ऊँचाई से चौथाई हो तो अच्छा है और वेदी के ऊपर भी ध्वजा चढ़ाना चाहिये।

अर्थात् ध्वजा में पहले सफेद कपड़ा, पुनः लाल, पुनः सफेद, पुनः पीला, पुनः सफेद, पुनः काला फिर इसी क्रम से तैयार करावे।

इस विधि से तैयार किये गये ध्वज में तो छह पट्टियाँ और चार रंग आते हैं और साथिया के साथ-साथ दीपदंड, छत्र, चमर, धर्मचक्र लिखकर ध्वजा के ऊपर जिनबिम्ब का आकार बनाने का विधान है जो कि प्रतिष्ठातिलक वाले ध्वज के समान ही आकार को बताता है।

इसी में श्लोक नं. 71 से 73 तक में ध्वजारोहण के बाद ध्वजा की दिशा से शुभ-अशुभ शकुन देखने का फलादि बताया है।

श्वेत पताका का वर्णन उत्तरपुराण में भी आया है–

शतसंवत्सरे याते कुमारसमये पुरम् ।
चलत्सितपताकाभिः सर्वत्रोद्बद्धतोरणैः ।।38।।

अर्थात् कुमारकाल के सौ वर्ष बीत जाने पर एक दिन भगवान मल्लिनाथ ने देखा कि समस्त नगर हमारे विवाह के लिए सजाया गया है, कहीं चञ्चल सफेद पताकाएँ फहराई गई हैं तो कहीं तोरण बाँधे गये हैं ।

अर्थात् घर के अग्र भाग पर सफेद ध्वजा फहरा रही थी।

पद्मपुराण भाग-1, पर्व - 8, पृ.-188 पर मंदिर पर श्वेत ध्वजा का स्पष्ट वर्णन है–

सितकेतुकृतच्छायाः सहस्राकारतोरणाः।
शृङ्गेषु पर्वतस्यामी विराजन्ते जिनालयाः।।276।।

अर्थात् सफेद पताकाएँ जिन पर छाया कर रही हैं तथा जिनमें हजारों प्रकार के तोरण बने हुए हैं ऐसे ये जिनमन्दिर पर्वत के शिखरों पर सुशोभित हो रहे हैं।

पद्मपुराण-भाग 3 में सुमेरु पर्वत के पाण्डुक वन के जिनमंदिर के शिखरों पर नाना वर्ण की ध्वजाओं का प्रमाण आता है। यथा-

नानावर्णचलत्केतुकाञ्चनस्तम्भभासुरम्।
गम्भीरं चारुनिर्व्यूहमशक्याशेषवर्णनम्।।47।।
पञ्चाशद्योजनायामं षट्त्रिंशन्मानमुत्तमम्।
इदं जिनगृहं कान्ते सुमेरोर्मुकुटायते।।48।।

जिस पर नाना रंग की पताकाएँ फहरा रही हैं, जो सुवर्णमय खम्भों से सुशोभित है, गंभीर है, सुन्दर छज्जों से युक्त है, जिसका सम्पूर्ण वर्णन करना अशक्य है, जो पचास योजन लम्बा है और छत्तीस योजन चौड़ा है। हे कान्ते! ऐसा यह जिनमंदिर सुमेरु पर्वत के मुकुट के समान जान पड़ता है।।47-48।।

कारिता हरिषेणेन, सज्जनेन महात्मना।
एतान् वत्स नमस्य त्वं, भव पूतमनाः क्षणात् ।।277।।

ये सब मन्दिर महापुरुष हरिषेण चक्रवर्ती के द्वारा बनवाये हुए हैं। हे वत्स! तू इन्हें नमस्कार कर और क्षण-भर में अपने हृदय को पवित्र कर।

7. कुल मिलाकर जैनशासन में ध्वजा के वर्णन में भिन्न-भिन्न वर्ण की ध्वजाओं के प्रमाण मिलते हैं। इस विषय में सन् 1974 से प्रचलित हुई पंचरंगी ध्वजा के संदर्भ में मैंने पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी से वार्ता की, उनसे प्राप्त उत्तर यहाँ यथानुरूप प्रस्तुत है –

"सन् 1972 में मैं दिल्ली के अनेक प्रतिष्ठित महानुभावों (परसादी लाल जी पाटनी, पारसदास जी मोटर वाले आदि) के विशेष आग्रह पर राजस्थान से दिल्ली आई। वहाँ परमपूज्य भारतगौरव आचार्यश्री देशभूषण महाराज ने मुझे भगवान महावीर का 2500वाँ निर्वाण महोत्सव को राष्ट्रीय और शासन स्तर पर मनाने की सम्पूर्ण रूपरेखा से परिचित कराया। सन् 1973 में मुनिश्री विद्यानंद महाराज दिल्ली पधारे, सन् 1974 में पूज्य आचार्य श्री धर्मसागर जी का भी ससंघ पदार्पण हुआ और निर्वाण महोत्सवसम्बन्धी सभी मीटिंगों में हम सभी साधुगण भाग लेते थे। एक बार जैनध्वज के सम्बन्ध में जब पंचरंगी ध्वज का प्रारूप आया तो आचार्य श्री धर्मसागर महाराज ने पहले तो उसे पूर्णरूपेण अस्वीकृत कर दिया, क्योंकि तब तक परम्परागतरूप से केशरिया ध्वज ही जैनशासन के ध्वजरूप में मंदिरों के शिखरों पर एवं महोत्सवों के प्रारंभ में किये जाने वाले ध्वजारोहण में फहराया जाता था इसलिए दोनों आचार्य इसे सहज

स्वीकार नहीं कर पाए। बात कुछ और आगे बढ़ी, तब दोनों आचार्यभगवंतों ने मुझे आदेशित किया कि ज्ञानमती जी ! क्या कहीं आगम में पंचरंगी ध्वज का कोई प्रमाण आया है.... आदि। मैंने 2 दिन का समय माँगा और दिगम्बर जैन आगम ग्रंथों का आलोडन किया तो जम्बूद्वीप-पण्णत्ति ग्रंथ में सुमेरु पर्वत के मंदिरों के वर्णन में एक जगह वर्णन मिला, उसे यहाँ ज्यों की त्यों प्रस्तुत किया जा रहा है–

रयणमए जगदीए रयद्णमयापीढैतंगसिहरेसु।
मणिमयखंभेसु तहा धयणिवहा होंति णिद्दिट्ठा।।31।।
सीहगयहंसगोवहसयवत्तमऊरमयरधयणिवहा।
चक्कायवत्तगरुढा दसविहसंखा गुणेयव्वा।।32।।
अट्ठसयं अट्ठसयं एगेगधयाण होंति परिवारा।
वरपंचवण्णदिव्वा मुत्तामणिदामकयसोहा।।33।।

(पंचम अधिकार)

रत्नमय पृथिवी पर स्थित रजतमय पीठ के ऊपर ऊँचे शिखरों वाले मणिमय खम्भों के ऊपर ध्वजासमूह निर्दिष्ट किये गये हैं।

सिंह, गज, हंस, गोपति (वृषभ), कमल, मयूर, मकर, चक्र, आतपत्र और गरुड़, इन दश प्रकार की ध्वजाओं के समूह जानना चाहिए।

इनमें से एक-एक ध्वजा के मोतियों व मणियों की मालाओं से शोभायमान उत्तम पाँच वर्णवाली एक सौ आठ-एक सौ आठ दिव्य परिवारध्वजाएँ होती हैं।

अर्थात् परिवार ध्वजाओं में यहाँ पंचरंगी लघु ध्वजाएँ ग्रहण की गई हैं। लेकिन वहाँ महाध्वजा के वर्ण का कोई स्पष्टीकरण नहीं आया है।

इस प्रमाण को देखकर आचार्यद्वय ने इस पंचरंगी ध्वज के लिए अपनी स्वीकृति प्रदान की थी ।

इन सबसे तात्पर्य यह निकलता है कि आगम में जिनमंदिरों के शिखरों पर श्वेत ध्वजा फहराने के उदाहरण तो मिलते हैं किन्तु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, विधि-विधानों के प्रारंभ में केशरिया ध्वज लहराने की ही प्राचीन परम्परा रही है। सन् 1974 से पूर्व तो पूर्णरूपेण केशरिया ध्वज से ही ध्वजारोहण किया जाता था और सन् 1974 के बाद से भी अधिकतम महोत्सवों में केशरिया ध्वज से तथा कतिपय स्थानों पर पंचरंगी ध्वज से भी ध्वजारोहण किया जाता है एवं कहीं-कहीं दक्षिण भारत में विद्वानों द्वारा सफेद ध्वजा लहराने की सूचना भी

प्राप्त हुई है।

24 फरवरी 2010 को हस्तिनापुर पधारे एक प्रतिष्ठित महानुभाव से चर्चा हुई तो उन्होंने चर्चा के मध्य बताया कि "सन् 1974 से पूर्व सभी मंदिरों में केशरिया ध्वज ही लहराने की परम्परा थी, उसके बाद से अब कहीं-कहीं पंचरंगी ध्वज भी लगाते हैं किन्तु ध्वजारोहण में सर्वत्र आज भी केशरिया ध्वज ही लगाने की परम्परा दक्षिण भारत में है।"

इसी प्रकार पूज्य मुनिश्री अमितसागर महाराज (आचार्य श्री धर्मसागर महाराज के शिष्य) ने फरवरी 2010 में बताया कि मैंने स्वयं दक्षिण भारत में अनेक स्थानों पर पंचकल्याणक महोत्सव में केशरिया ध्वज से ही ध्वजारोहण होते देखा है।

फरवरी 2010 में जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में विराजमान तीर्थंकरत्रय महामस्तकाभिषेक में दक्षिण भारत से पधारे क्षुल्लक श्री निर्वाणसागर जी (शिष्य-मुनि श्री नमिसागर महाराज) ने बताया कि दक्षिण भारत में ध्वजारोहण में अधिकतम केशरिया ध्वज ही प्रयोग किया जाता है, कहीं-कहीं मंदिर के ऊपर पंचरंगी ध्वज भी अब लगाया जाने लगा है।

इसी प्रकार अन्य अनेक वरिष्ठ सन्तों, भट्टारकों एवं विद्वान् प्रतिष्ठाचार्यों से ज्ञात हुआ कि ध्वजारोहण में तो सदा हम लोगों ने केशरिया ध्वज ही प्रयुक्त किया है क्योंकि केशरिया ध्वज ही प्राचीन समय से चला आ रहा है ।

चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर महाराज की परम्परा के वरिष्ठतम ब्रह्मचारी थे बाबा सूरजमल जी प्रतिष्ठाचार्य, उन्हें भी हमने हमेशा (सन् 1974 के बाद भी) केशरिया झण्डे से ही झण्डारोहण कराते देखा है।

पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री-सोलापुर ने भी सन् 1975 में हस्तिनापुर के पंचकल्याणक में केशरिया झण्डे से ही ध्वजारोहण कराया था, उस समय आचार्य श्री धर्मसागर महाराज, उपाध्याय श्री विद्यानंद महाराज एवं पूज्य गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी ससंघ विराजमान थे।

पं. श्री नाथूलाल जी शास्त्री-इन्दौर भी केशरिया एवं पंचवर्णी दोनों प्रकार की ध्वजाओं को मान्यता प्रदान करते थे, तभी उन्होंने अपने "प्रतिष्ठा प्रदीप" ग्रंथ के पृ. 25 पर "प्रतिष्ठा मंडप आदि का निर्माण" हेडिंग के अन्दर लिखा है–

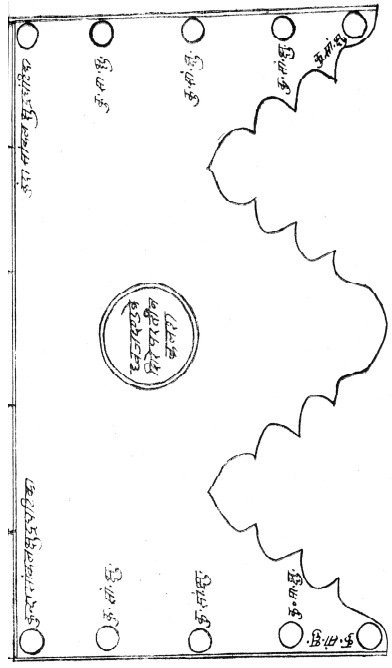

मण्डप के आगे पीतवर्णी बड़े झण्डे का स्थान मण्डप से डेढ़ा या दुगुना काष्ठ का या पाइप ऊँचा लगाने को तीन कटनी ईंटों से मजबूत बनाई जावे।"

इन्होंने इसी प्रतिष्ठा प्रदीप में पृ. 126 पर लिखा है–

"सित, रक्त, सित, पीत, सित, कृष्ण (नील) इस प्रकार पुनः मंदिर की दीर्घता के अनुसार रंगीन ध्वजा तैयार करावें ।" अर्थात् इस क्रम से छह पट्टी की रंगीन ध्वजा बनाने का प्रमाण पुष्ट होता है।

पण्डित श्री शिवजीरामजी जैन पाठक– रांची द्वारा संपादित "श्री प्रतिष्ठा विधान संग्रह" अपरनाम, "प्रतिष्ठाचंद्रिका" के पृ. 137 पर बनाए गये ध्वजपट्ट का चित्र देखिये–

श्रीभट्टाकलंक रचित "प्रतिष्ठाकल्प" में पृ. 130 पर देखें–

एवं सुधौतसुश्लिष्ट, श्वेतनूतनवाससा।
कल्पयित्वा ध्वजं तत्र, शिल्पिना लेखयेदिति ।।37।।

अर्थात् इस श्लोक के अनुसार श्वेत नूतन वस्त्र से निर्मित ध्वजा से ध्वजारोहण करने का विधान स्पष्ट होता है । इसी में इस श्वेत महाध्वज के मूल में (नीचे) और चारों तरफ कौसुम्भ और लाल वस्त्र की अनेक क्षुद्र ध्वजाएँ स्थापित करने संबंधी श्लोक भी उल्लिखित हैं ।

इसी ग्रंथ में पृ. 70 पर है कि– प्रतिष्ठामण्डप के समीप ही या शुद्ध नदी या सरोवर के तट पर खनिस्थान नियुक्त करके उस उर्वरा जमीन में एक लाल ध्वजा गड़वा दी जाए । पृ. 80 पर है– इसके साथ ही ऊपर चढ़ाने के लिए एक त्रिकोण पताका को बांस में पहनाकर सतिलक ससूत्र करें । इसमें पृ. 102 पर नन्दावेदी में ध्वजास्थापन का सुंदर क्रम दिया है–

मध्य के कोठे के ऊपर पंचवर्णी ध्वजा को चंद्रोपक में लगा देना चाहिये–

अष्टकोठी सिद्धमंडल पर सफेद रंग की, छत्तीस कोठी आचार्यमण्डल पर लाल रंग की, पच्चीस कोठी उपाध्यायमण्डल पर हरे रंग की, अट्ठाईस कोठी साधुमण्डल पर पीले रंग की, 25 कोठी जिनवाणीमण्डल पर सफेद रंग की, 16 कोठी भावनामण्डल पर लाल रंग की, 10 कोठी धर्ममण्डल पर हरे रंग की और 29 कोठी रत्नत्रय मण्डल पर पीले रंग की ध्वजाएँ स्थापित करनी चाहिए। इस नव कोठी मण्डल के दक्षिण भाग में रखकर कलशों की और उत्तर भाग में रखकर ध्वजा की प्रतिष्ठा करनी चाहिये ।

श्री वसुविन्दु आचार्य रचित ''प्रतिष्ठा पाठ'' के पृ. 99-100 पर निम्न श्लोक दृष्टव्य हैं–

चीनश्लक्ष्ण मृदूत्तरीय पटलैश्छन्नं पुरा निर्मितं,
मस्तोपर्यनुयोग सूचिकलशं लंबत्पताकापटं ।
चातुर्दिश्य तिरस्करिण्यधिवृतं गोपानसीभिर्युतं,
द्वारोपांतविशोभियक्षयुगलं प्रांशुं मनोल्हादकं ।।319-321।।

अर्थात् चीन का कोमल सिचक्कण सुंदर आच्छादन वस्त्रनि करि ढक्या हुआ पूर्व निर्मापित किया ..... अरु लम्बायमान है पताका का पट जामैं..... अरु कोण में उद्भूत है छोटी ध्वजा जामै, अरु उछलती अर दृढ देदीप्यमान रज्जून करि बंधननै प्राप्त भयो..... तीनलोकपति जिनेन्द्र का पूजन करणेवारेन के स्तन करि नित्य स्थापन किये, ऐसैं मंडप के अग्र ध्वजारोहण करना।।319-321।।

24. ब्र. शीतलप्रसाद जैन द्वारा रचित ''प्रतिष्ठासार संग्रह'' के पृ. 196 पर ध्वजा का प्रमाण लिखा है–12 अंगुल लंबी व 8 अंगुल चौड़ी हो, कपड़ा लाल या पीला हो, उसमें चंद्रमा, माला, नक्षत्र आदि के चिन्ह हों ।

ध्वजा कहाँ लगाई जाती हैं ?

जैन शास्त्रों में वर्णन है कि तीनों लोकों के अकृत्रिम चैत्यालयों के शिखरों पर रंग-बिरंगी ध्वजाएँ फहराती रहती हैं जो कि रत्नों की होते हुए भी कोमलवस्त्र के समान लहराती हैं। जैसे–मध्यलोक के 458 चैत्यालयों पर अलग-अलग चिन्ह सहित भिन्न-भिन्न रंग की ध्वजाएँ आरोपित करते हुए इन्द्रगण जो पूजा करते हैं, उसका नाम है इन्द्रध्वज पूजा ।

संस्कृत के इन्द्रध्वज विधान में कहा है–

यत्र-यत्र कृता पूजा, तत्र तत्र विडौजसा ।
ध्वजा प्रस्थापिता नित्यं, तस्मादिन्द्रध्वजं स्मृतम्।।

अर्थात् इन्द्रों ने जहाँ-जहाँ पर पूजा की, वहाँ-वहाँ पर अर्थात् उन-उन चैत्यालयों पर ध्वजा आरोपित करते गए, इसलिए इस विधान का ''इन्द्रध्वज'' यह सार्थक नाम है ।

इस इन्द्रध्वज मण्डल की चार दिशा एवं चार विदिशाओं में 8 महाध्वजाएँ आरोपित की जाती हैं एवं मण्डल के ऊपर 458 ध्वजाएँ आरोपित की जाती हैं जिन पर निम्न प्रकार के दश चिन्ह बनाये जाते हैं–

यथा - **''मालामृगेन्द्रकमलांबरवैनतेय मातंगगोपतिरथांगमयूरहंसाः''**

अर्थ–माला, सिंह, कमल, वस्त्र, गरुड़, हाथी, चकवा-चकवी, मयूर और हंस ये दश प्रकार के चिन्ह उन ध्वजाओं में बनवाये जाते हैं।

ये अलग-अलग चिन्ह वाली ध्वजाएँ किन मंदिरों पर कौन सी लगती हैं ? इसका वर्णन इन्द्रध्वज विधान की पुस्तक में प्रस्तावना से द्रष्टव्य है ।

आदिपुराण में भगवान ऋषभदेव के समवसरण में द्वितीय कटनी पर आठ दिशाओं में आठ चिन्हों से युक्त महाध्वजाओं का बहुत ही सुन्दर वर्णन है। यथा– ''द्वितीय पीठ पर आठ दिशाओं में आठ बड़ी-बड़ी ध्वजाएँ सुशोभित हो रही थीं, वे बहुत ऊँची थीं और ऐसी जान पड़ती थीं मानो इन्द्रों के आठ लोकपाल ही हों। चक्र, हाथी, बैल, कमल, वस्त्र, सिंह, गरुड़ और माला चिन्ह से सहित तथा सिद्ध भगवान के आठ गुणों के समान वे ध्वजाएँ बहुत अधिक सुशोभित हो रही थीं ।''

''प्रत्येक जिनमंदिर की चारों दिशाओं में ध्वजभूमि के अन्दर सिंह, हाथी, वृषभ, गरुड़, मयूर, चंद्र, सूर्य, हंस, कमल और चक्र के चिन्हों से चिन्हित, 108-108 मुख्य ध्वजाएँ हैं । सभी मिलाकर 470880 ध्वजाएँ हैं। वे ध्वजाएँ प्रथम और द्वितीय कोट के अंतराल में हैं ।''

सिंह, हंस, गज, कमल, वस्त्र, वृषभ, मयूर, गरुड़, चक्र और माला के चिन्हों से सुशोभित दश प्रकार की पंचवर्णी महाध्वजाओं से उन चैत्यालयों की दशों दिशाएँ ऐसी जान पड़ती हैं मानों लहलहाते हुए नूतन पत्तों से ही युक्त हों[1]।

यह तो अकृत्रिम चैत्यालयों एवं भगवान के समवसरण की ध्वजाभूमि में स्थित महाध्वजाओं का वर्णन हुआ है इसी प्रकार से इस धरती पर मनुष्यों द्वारा बनाए जाने वाले कृत्रिम मंदिरों पर शिखर बनाने, उन पर स्वर्ण कलशारोहण

1. सिंहहंसगजाम्भोजदुकूलवृषभध्वजैः। मयूरगरुडाकीर्णश्चक्रमालामहाध्वजैषः ।।369।।
दशार्धवर्णभासद्भिर्दभेददैर्दिशो दश। साशीतिक सहस्रान्तैर्भान्ति पल्लविता इव ।।370।।
(हरिवंशपुराण सर्ग 5, पृ. 95)

करने की एवं कलश से ऊँची ध्वजा आरोपित करने की प्राचीन परम्परा चली आ रही है, जिसके प्रमाण मैंने प्रतिष्ठा ग्रंथों के आधार से दिये हैं ।

इसके साथ ही पंचकल्याणक महोत्सवों एवं वृहत्पूजा विधानों के प्रारंभ में जो ध्वजारोहण किया जाता है वह महोत्सव की निर्विघ्न सम्पन्नता एवं सर्वजन कल्याणकारी होता है । ऐसे ध्वजारोहण (झण्डारोहण) कार्यक्रमों में प्रायः ध्वजा फहराने के बाद उसकी उड़ती नोक की दिशा देखकर विद्वान् प्रतिष्ठाचार्यगण उसका शुभाशुभ फल बताते देखे जाते हैं । इस विषय में प्रतिष्ठासारोद्धार ग्रंथ के अध्याय-5, पृ. 115 पर लेखक पं. आशाधरजी ने लिखा है–

मुक्ते प्राचीं गते केतौ, सर्वकामानवाप्नुयात् ।
उत्तराशां गते तस्मिन्, स्वस्यारोग्यं च संपदः ।।71।।
यदि पश्चिमतो याति, वायव्ये वा दिशाश्रये ।
ऐशाने वा ततो वृष्टिः, कुर्यात् केतुः शुभानि सा ।।72।।
अन्यस्मिन् दिग्विभागे तु, गते केतौ मरुद्वशात् ।
शांतिकं तत्र कर्तव्यं, दान पूजा विधानतः ।।73।।

अर्थात् ध्वजा छोड़ने पर यदि वह पूर्वदिशा की तरफ जाए तो सब इष्ट मनोरथ सिद्ध होते हैं । पश्चिम, वायव्य व ईशान दिशा में ध्वजा की नोक जावे तो सभी के लिए कल्याणकारी होती है अथवा हवा के निमित्त से शेष अन्य दिशाओं में ध्वजा की नोक जाने से दान-पूजा-विधान से शांतिकर्म करना चाहिए।

यहाँ ध्वजा के प्रकरण में साररूप में यह समझना है कि जैनशासन में श्वेत, केशरिया, पंचवर्णी आदि रंग की त्रिकोणाकार एवं आयताकार ध्वजाओं से ध्वजारोहण करने की परम्परा है तथा मंदिरों के ऊपर जो स्थाईरूप से अष्टधातु की ध्वजा या कपड़े की ध्वजा लगाई जाती हैं वे मात्र त्रिकोणाकार, द्वित्रिकोणाकार अथवा केशरिया वस्त्र की ही देखी जाती हैं ।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में झण्डारोहण के बाद अंकुरारोपण करने की परम्परा देखी जाती है। इसमें विशेष ध्यान रखने की बात यह है कि अंकुरारोपण के मंत्रों का उच्चारण उच्च स्वर से तथा माइक से न करके मन में करना चाहिए।

इसके पश्चात् पंचकल्याणक महोत्सव में गर्भकल्याणक से लेकर

निर्वाणकल्याणक तक के समस्त विधि-विधानों से संबंधित कतिपय प्रेरणाबिन्दु यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जो विद्वानों एवं प्रतिष्ठाचार्यों के लिए अनुकरणीय एवं विचारणीय हैं–

(1) पंचकल्याणक मंच पर तीर्थंकर माता का एक प्रसूतिगृह बनाया जाता है, जिसमें गर्भकल्याणक की अन्तरिम क्रियाएँ होती हैं।

(2) गर्भकल्याणक की अन्तरिम क्रिया (गर्भशोधन, जातकर्म आदि) जो प्रमुखरूप से पेटिका (मंजूषा) या मटकी में या पाषाण की माता बनाकर उसके सामने कराई जाती हैं, उसका प्रदर्शन सार्वजनिकरूप में नहीं करना चाहिए। टी.वी. पर तो इसे दिखाने की कोई बात ही नहीं है। गर्भशोधन क्रिया के मंत्र भी माइक पर न बोलकर मन में बोलना चाहिए। यह क्रिया पर्दे के अंदर करना चाहिए।

(3) गर्भकल्याणक की अंतरंग क्रियाओं में केवल तीर्थंकर माता की पूजन सार्वजनिक रूप में कराना एवं दिखाना चाहिए, जो कि प्रतिष्ठाग्रंथ में वर्णित है, इसमें विधिनायक तीर्थंकर प्रतिमा की माता (मरुदेवी.....आदि किसी भी माता की) पूजा विशेषरूप से संगीत के साथ करा दें एवं शेष 23 माताओं की पूजा मंत्रों से करा सकते हैं।

अंतरिम क्रिया में 16 स्वप्नों के श्लोक पढ़कर जो फल-पुष्प परिवर्तन की विधि है, वह प्रतिष्ठाचार्य को मन में मंत्र बोलकर पर्दे के अंदर बिना माइक के कराना चाहिए।

(4) गर्भकल्याणक की अन्तरिम क्रिया के समय कार्यक्रम में बनने वाले माता-पिता को मंजूषा के पास बिठाकर कुछ विद्वान् उनके ऊपर भी पूरी विधि करते हुए मंत्रों से पुष्प क्षेपण आदि करते हैं वह कदापि नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे तीर्थंकर की दो माताओं जैसा दृश्य उपस्थित हो जाता है जो कि दोषास्पद प्रतीत होता है। अन्यथा श्वेताम्बर परम्परामान्य भगवान महावीर की दो माताओं जैसी भ्रान्ति समाज में उत्पन्न हो जायेंगी।

(5) रात्रि में जब मंच पर प्रदर्शन वाली माता के स्वप्न आदि का प्रदर्शन होता है, उस समय मंजूषा में स्थापित माता पर कोई क्रिया नहीं करना चाहिए और न ही उन्हें सार्वजनिक दिखाना चाहिए। अन्तरिम क्रियाओं को अन्तरिम (गुप्त) ही रखने से उसकी महत्ता बनी रहती है, अन्यथा उनका महत्व समाप्त होता है।

(6) गर्भकल्याणक के दिन प्रायः तीर्थंकर माता बनने वाली सौभाग्यशालिनी

नारीरत्न की गोदभराई की रस्म सम्पन्न होती है, जिसमें सौभाग्यवती महिलाएँ अनेक प्रकार की भेंट देकर उनकी गोद भरकर अपने सौभाग्य-सुख की मंगल कामना करती हैं। अनेक बंध्या स्त्रियाँ तीर्थंकर माता की गोद भरने से पुत्रवती होती देखी गई हैं तथा कुमारी कन्याएँ उनकी गोद भरकर शीघ्र सौभाग्यवती–विवाहिता हो गई हैं। ऐसा चमत्कार तीर्थंकर माता बनने वाली नारी के अन्दर उनके अत्यन्त शुभ परिणामों के कारण उत्पन्न हो जाता है।

(7) गर्भकल्याणक में भगवान के माता-पिता बनने वाले दम्पत्ति मंच पर होने वाले स्वप्न आदि के वार्तालाप को कभी-कभी बोलने में अक्षम होते हैं, तो प्रायः प्रतिष्ठाचार्य पीछे से पिता का पाठ बोलते हुए देखे जाते हैं और माता का पाठ कोई न कोई अन्य महिला बोलती हैं, यह सर्वथा अनुचित है। वे स्वप्नदर्शन या स्वप्नफल आदि के पाठ या तो वे ही माता-पिता दम्पत्ति जैसा भी बोल सकें, वैसा बोलें, अन्यथा किसी वक्ता दम्पत्ति से बुलवा दें। अन्यथा विद्वान् पण्डित स्वयं पति-पत्नी दोनों के पाठ बोल देवें। कोई भी पुरुष एवं कोई भी महिला के द्वारा पति-पत्नी का पाठ बुलवाने से दोष लगता है। फिल्म का खुला वातावरण प्रतिष्ठाओं में उचित नहीं है। इसमें सर्वोत्तम यही है कि माता-पिता बनने वाले स्त्री-पुरुष को अपने-अपने बोलने वाले पाठ के कागज दे दें, वे उन्हें देखकर बोलें और उनके वास्तविक शब्दों को ही जनता भी सुने, तभी ज्यादा आनंद आएगा क्योंकि धार्मिक-सामाजिक कार्यक्रमों में व्यावसायिक लोगों द्वारा प्रस्तुतीकरण वास्तविकता को भंग कर देता है।

(8) गर्भकल्याणक के दिन रात्रिकालीन दृश्यों में माता-पिता द्वारा सोलह स्वप्नों के पूछने और उनका फल बताने के कार्यक्रम के पश्चात् प्रतिष्ठाचार्य मंच से भगवान के गर्भकल्याणक की घोषणा अवश्य करें।

गर्भकल्याणक की घोषणा के पश्चात् इन्द्रों का आगमन, उनके द्वारा माता-पिता कों भेंट दिया जाना आदि दृश्य दिखाकर प्रथम दिन के कार्यक्रम का समापन करना चाहिए।

(9) गर्भकल्याणक के मंचन में सौधर्म इन्द्र की सुधर्मा सभा में अन्य सभासद इन्द्र-इन्द्राणी सौधर्म इन्द्र से प्रश्न करते समय नृत्य करते हुए नहीं आना चाहिए, क्योंकि इन्द्रसभा सौधर्म इन्द्र की गरिमा के अनुरूप पूरी तरह शालीन और सुव्यवस्थित होना चाहिए। इन्द्र-इन्द्राणियों का एक सामूहिक भक्ति नृत्य इन्द्रसभा के समापन में गर्भकल्याणक की खुशी का प्रदर्शन करते हुए प्रस्तुत

किया जाना चाहिए।

जनता के आकर्षण हेतु इन्द्रसभा के प्रारंभ और मध्य में देव अप्सरा के रूप में कन्याओं अथवा महिलाओं के नृत्य करा सकते हैं।

इन्द्रों के द्वारा तो खड़े होकर अच्छे-अच्छे शास्त्रीय प्रश्न ही कराना चाहिए।

(10) प्रतिष्ठा में यदि विधिनायक ऋषभदेव भगवान हैं, तो मंच पर अयोध्या नगरी में सर्वतोभद्र महल बनाने से पूर्व भोगभूमि के समापन और कर्मभूमि के आरंभ का दृश्य भी प्रस्तुत करें।

भोगभूमि के काल में जब इस धरती पर भोगभूमि का अंत होने लगा, तब जनता राजा नाभिराय के पास समस्या का समाधान करने आती है, तो वे ऋषभदेव के पास प्रजा को भेजते हैं, उन दृश्यों में प्रजा में स्त्री-पुरुषों को जंगली मानव जैसा न दिखाकर अच्छे सुन्दर-सुडौल-सुसज्जित वस्त्राभरणों से सहित ही दिखाना चाहिए, क्योंकि भोगभूमि के मानव तो शारीरिक दृष्टि से बहुत सुन्दर दिखते हैं। दिगम्बर जैन शास्त्रों में उन्हें वनमानुष जैसा जीवन व्यतीत करना नहीं माना है और न ही जंगली मानव से कर्मभूमि बनती है।

(11) इसके बाद अयोध्या नगरी में 81 मंजिल का सर्वतोभद्र महल बनाकर सौधर्म इन्द्र के द्वारा उस महल की पुण्याहवाचन मंत्रों से शुद्धि करते और नाभिराय-मरुदेवी का उसमें प्रवेश दिखावें।

(12) इन्द्रों की ड्रेस में राजाओं की शेरवानी से भिन्न सुन्दर धोती-दुपट्टा (गोटा-किनारी के काम वाले), हार, मुकुट, बाजूबंद, करधनी आदि होना चाहिए। उसमें भी सौधर्म इन्द्र की ड्रेस सबसे भिन्न अत्यधिक सुन्दर होना चाहिए।

(13) जन्मकल्याणक में प्रातःकालीन दिखाये जाने वाले दृश्य में मंच पर पर्दे के पीछे सोती हुई तीर्थंकर माता का पलंग रखें। साथ में देवियाँ खड़ी हों। पर्दे के बाहर मंच के किनारे पर पिता को राजसी सिंहासन पर बिठा दें तथा मंच के सामने नीचे पाण्डाल में सौधर्म इन्द्र की सुधर्मा सभा लगी हुई दिखावें। इसके बाद सर्वप्रथम प्रतिष्ठाचार्य जन्मकल्याणक की क्रिया प्रसूतिगृह में करके माता के पास जिनबालक के रूप में प्रतिष्ठेय प्रतिमा को लाकर रख दें और जन्मकल्यापक का मंत्र (मन में) पढ़कर भगवान के जन्म की घोषणा करें, तुरन्त सौधर्म इन्द्र का आसन कम्पित हो और सुधर्मा सभा में लघु वार्तालाप के अनंतर इन्द्र को ऐरावत हाथी पर चढ़कर आता हुआ दिखावें।

अथवा सभी इन्द्र-इन्द्राणी तीर्थंकर की नगरी, माता-पिता एवं जन्मकल्याणक

की जय-जयकार करते हुए नगरी की प्रदक्षिणा के प्रतीक में पूरे पाण्डाल की तीन प्रदक्षिणा लगाकर सामने से मंच पर आते हुए दिखावें।

यहाँ ध्यान देना है कि भगवान तीर्थंकर बालक का नाम अभी नहीं बोलना चाहिए, क्योंकि प्रतिष्ठा ग्रंथों के अनुसार जन्माभिषेक के बाद पाण्डुकशिला पर सौधर्म इन्द्र उनका नामकरण करते हैं, तब नाम का उच्चारण करके जय-जयकार की जाती है। उसके पहले निम्न प्रकार से जयकारा कर सकते हैं–

तीर्थंकर भगवान की जय
अयोध्या नगरी की जय
महाराजा नाभिराय की जय
महारानी मरुदेवी की जय
जन्मकल्याणक महोत्सव की जय

पुनश्च–

मंच पर पहुँचकर इन्द्र तीर्थंकर भगवान के पिता से जन्मकल्याणक मनाने की आज्ञा मांगें और शचि इन्द्राणी को प्रसूतिगृह में भेजें, ध्यान रखें कि उस समय शचि इन्द्राणी के हाथ में मायामयी बालक न देवें, अपितु माता को मायामयी निद्रा में सुलाने के पश्चात् स्वर्ग से विमान द्वारा मायामयी बालक आता हुआ दिखावें और वह बालक माता के पास रखा जावे और पर्दा खोल दें। वहाँ मायामयी निद्रा में माता को सुलाकर उनके पास से प्रतिमा उठाकर मायामयी बालक को रखना आदि दृश्य दिखाना और इन्द्राणी का मंच पर बालक को लाना ये सब दृश्य बड़े रोमांचक होते हैं।

इसमें विशेष बात यह चिन्तन करने योग्य है–

प्रायः सभी पंचकल्याणकों में जन्मकल्याणक के इस प्रसंग में यह दृश्य दिखाया जाता है कि सौधर्म इन्द्र जिनबालक को अपने हाथों में लेने के लिए इन्द्राणी की खूब मनुहार करता है और काफी देर तक इसे आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करते हुए विद्वान् एवं संगीतकार इन्द्र को इन्द्राणी के पैर पड़ते हुए भी दिखाने लगते हैं किन्तु यह अनुचित प्रतीत होता है, क्योंकि सौधर्म इन्द्र जैसे महान इन्द्रराज के लिए इन्द्राणी की इतनी मनुहार शोभास्पद नहीं है और न ही शचि इन्द्राणी का अपने पति इन्द्रराज को इतना झुकाना अच्छा लगता है।

इस दृश्य को एक सीमा तक शालीनता और गरिमा के साथ दिखावें तथा आकर्षण के लिए इन्द्र-इन्द्राणी का भक्तिविभोर होकर ताण्डव नृत्य करावें। इस

अवसर पर मंच पर कुछ देर उत्सव के माहौल में अन्य इन्द्र-इन्द्राणी भी भक्तिनृत्य प्रस्तुत कर सकते हैं।

(14) पाण्डुकशिला पर जन्माभिषेक के बाद उन्हें वस्त्राभरण से सुसज्जित करके वहीं पर प्रतिष्ठाचार्य को मंत्र बोलकर इन्द्र के मुख से तीर्थंकर बालक के नाम की घोषणा कराना चाहिए। भगवान के नाम के साथ कुमार आदि (जैसे- आदिकुमार, पार्श्वकुमार.....आदि) नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि वे जन्म से ही नाथ होते हैं। उन्हें आदिनाथ, पार्श्वनाथ आदि ही कहना चाहिए।

आजकल सभा में भगवान के नामकरण का दृश्य प्रस्तुत किया जाता है, वह उचित नहीं है, यह विधि अन्तरंग है।

(15) पाण्डुकशिला पर जन्माभिषेक महोत्सव मनाने के बाद पाण्डाल के मंच पर इन्द्रों के द्वारा प्रतिमा की आकारशुद्धि पूर्ण शास्त्रीय विधि अनुसार होना चाहिए। आकारशुद्धि में सभी प्रकार के पत्ते आदि का चूर्ण पहले से ही बनवाकर रखें और मिट्टी के कलशों में डालकर यथाक्रम से नम्बर डालकर कलश स्थापित करें और क्रम से ही उन कलशों से अभिषेक कराते हुए आकारशुद्धि का कार्यक्रम सम्पन्न करें।

यह आकारशुद्धि जन्माभिषेक का ही प्रतीक है किन्तु पाण्डुकशिला पर भीड़ के कारण यह क्रम बन नहीं पाता है, इसलिए अलग से इसे विधिवत् क्रियान्वित करके प्रतिमा की शुद्धि की जाती है।

(16) जन्मकल्याणक के जुलूस में सौधर्म इन्द्र के ऐरावत हाथी को सबसे आगे रखना चाहिए। बैण्ड-बाजे वाले उसके आगे रहें, शेष सभी जनता, झाँकियाँ आदि पीछे होना चाहिए। भक्ति नृत्य करने वाले स्त्री-पुरुष ऐरावत हाथी के आगे थोड़ी दूर से नृत्य कर सकते हैं।

(17) जन्मकल्याणक के दिन (रात्रि में) पालना झुलाने की परम्परा सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज में प्रचलित है। प्रायः पंचकल्याणक में सर्वाधिक आकर्षण जन्मकल्याणक महोत्सव का होता है अतः पालने के समय कार्यकर्ताओं से बेरीकेटिंग व्यवस्था सुन्दर और सुदृढ़ बनवाना चाहिए ताकि क्रम-क्रम से लोग पालना झुलाकर निकलते जाएँ और भीड़ की धांधलबाजी में किसी के जेवर आदि का नुकसान न होने पाये।

(18) कहीं-कहीं पर पालने को बिजली की झालरों से इतना अधिक सजा दिया जाता है कि भगवान की प्रतिमा उसमें दिखती ही नहीं हैं, अतः सजावट

के साथ-साथ भगवान के वस्त्र-अलंकार की सुन्दरता का भी ध्यान रखना चाहिए, जिससे उनका सौंदर्य अधिक दिखाई दे, ऐसी ड्रेस और आभूषण-मुकुट आदि पहनावें।

(19) पालने के समय प्रतिष्ठाचार्य विद्वान् भगवान की आँखों में कज्जल लगाने हेतु बुआ की बोली लगवाते हैं और इस दृश्य को बहुत आकर्षकरूप में प्रस्तुत किया जाता है किन्तु प्रतिष्ठा ग्रंथों में यह विधि नहीं वर्णित है। यह तो साधारण बालकों में प्रायः चलता है अतः कज्जल लगाने का प्रदर्शन भगवान के लिए करना उपयुक्त नहीं प्रतीत होता है, क्योंकि तीर्थंकर भगवान की तो पूरी सेवा और देख-रेख स्वयं शचि-इन्द्राणी एवं स्वर्ग की देवियाँ करती हैं अतः यदि कज्जल लगवाना ही है, तो शचि इन्द्राणी से लगवाना चाहिए।

(20) तीर्थंकर बालक की बालसभा में मित्र बालकों द्वारा प्रश्नों की प्रस्तुति में अति साधारण घरेलू जैसे प्रश्नों की बजाय छोटे-छोटे प्रश्न शास्त्रीय ही (जैसे- गतियाँ कितनी हैं, इन्द्रियाँ कितनी हैं, पाप कितने हैं ?....इत्यादि) प्रस्तुत करना चाहिए क्योंकि तीर्थंकर तो गर्भकाल से ही मति-श्रुत-अवधि ज्ञान के धारी होते हैं, उनकी साधारण बालकों के समान सामान्य चेष्टाएँ नहीं होती हैं, तभी तो वे जन्मजात अवस्था में ही बड़े-बड़े 1008 कलशों का अभिषेक अपने ऊपर झेल लेते हैं।

(21) तीर्थंकर प्रभु के दीक्षाकल्याणक में गणधरवलय स्तोत्र पढ़ने की परम्परा भी किन्हीं-किन्हीं विद्वानों द्वारा आजकल देखी जा रही है। प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ के अनुसार उसे उस समय नहीं पढ़ना चाहिए, क्योंकि यह पाठ साधारण मुनि दीक्षा में पढ़ने योग्य है, न कि भगवान के दीक्षाकल्याणक में। तीर्थंकर प्रभु तो केवल ''नमः सिद्धं'' का उच्चारण करके स्वयं दीक्षा ग्रहण करते हैं, उनकी दीक्षा में किसी विधि की आवश्यकता ही नहीं होती है।

(22) भगवान की दीक्षा में पिच्छी-कमण्डलु देते समय ''भो अन्तेवासिन्! पिच्छिकां गृहाण गृहाण.....'' कभी नहीं बोलना चाहिए, क्योंकि वे किसी मुनि आदि के शिष्य नहीं होते हैं, उनकी दीक्षा तो दीक्षाकल्याणक है न कि किसी मुनि जैसी साधारण दीक्षा। अतः पिच्छी-कमण्डलु को उनके दाहिने और बाएँ हाथ की ओर केवल स्थापित कर देना चाहिए।

(23) तीर्थंकर महामुनि के नाम के साथ सागर या नन्दि (जैसे आदिनाथ को आदिसागर या नेमिनाथ, शांतिनाथ को नेमिसागर, शांतिसागर) आदि नहीं

जोड़ना चाहिए, प्रत्युत् उनका नाम ज्यों का त्यों आदिनाथ, शांतिनाथ, नेमिनाथ आदि ही रहना चाहिए। सागर आदि शब्द जोड़कर नाम बदलने की परम्परा तो वर्तमान की अति नवीन व्यवस्था साधारण मनुष्यों (मुनियों) के लिए है, तीर्थंकर भगवान की गरिमा का ध्यान रखते हुए उन्हें तो जन्म से ही भगवान कहना चाहिए अतः दीक्षा के बाद उन्हें तीर्थंकर महामुनि आदिनाथ या शान्तिनाथ आदि नाम के साथ उच्चारित करना चाहिए।

(24) आजकल दीक्षाकल्याणक के समय कुछ प्रतिष्ठाचार्य प्रतिमा के ऊपर अंकन्यास विधि आदि कर देते हैं, जो कि केवलज्ञान कल्याणक से पूर्व होना ही नहीं चाहिए।

इस संबंध में विभिन्न प्रतिष्ठा ग्रंथों के प्रमाण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं–

(1) प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ के अनुसार–

दीक्षाकल्याणक में मात्र भगवान को शिविका (पालकी) से उतारकर तपोवन में चन्द्रकान्तशिला पर स्थापित करना, वहाँ दीक्षावृक्ष की स्थापना करके प्रतिष्ठाचार्य अथवा उपस्थित आचार्य-मुनिराज उनके वस्त्राभूषण उतारकर सामने थाल में रखकर मस्तक पर केशर लगाकर उन्हें निकालकर केशलोंच प्रक्रिया को दिखा देवें और मंत्र बोलकर पिच्छी-कमण्डलु स्थापित करें, पुनः दाहिने हाथ में बंधे कंकण को खोलने का मंत्र है और भगवान को दीक्षा लेते ही सामायिक चारित्र होने के प्रतीक में पुष्पांजलि डालना और मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो जाने के प्रतीक में चार बत्ती वाला दीपक जलाने का मंत्र है।

अंकन्यास का विधान केवलज्ञान कल्याणक में पृ. 50-51 (जम्बूद्वीप से प्रकाशित प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ में) पर है। इससे पूर्व केवलज्ञान कल्याणक में कल्याणमालारोपण क्रिया एवं संस्कारमालारोपण क्रियाएँ वर्णित हैं अर्थात् केवलज्ञानकल्याणक में इन दोनों क्रियाओं के बाद ही मंत्रन्यास-अंकन्यास विधि की जाती है।

अंकन्यास विधि का पूर्व श्लोक देखें कि उसमें क्या कहा है–

सालोकलोकत्रितयैकनित्य-ज्योतिः परब्रह्ममहोदयस्य।
साक्षादभिव्यंजनमेव शब्द-ब्रह्मेति मंत्रानिह ताञ्यसामि।।1।।

अर्थात् अलोकाकाश सहित तीन लोक को प्रगट करने वाला, नित्यज्ञानरूपी- केवलज्ञान ज्योति को धारण करने वाला और परमात्मा के वैभव को स्पष्ट करने वाला यह शब्दब्रह्म है इसलिए उस शब्दब्रह्म के मंत्रों को जिनप्रतिमा के अवयवों

पर मैं न्यास करता हूँ। इस प्रकार उपर्युक्त श्लोक पढ़कर-**''मंत्रन्यासप्रतिज्ञापनाय प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।''** इस मंत्र को पढ़कर प्रतिमाओं पर पुष्पांजलि क्षेपण करके मंत्रन्यास की प्रक्रिया प्रारंभ करने का विधान है।

(2) प्रतिष्ठासारोद्धार (पण्डितप्रवर आशाधर जी विरचित) ग्रंथ के अनुसार–पृ. 101 से 103 तक वर्णित दीक्षाकल्याणक विधि में केशलोंच, दीक्षाग्रहण, चार ज्ञान प्रगट हुए बतलाने हेतु चार बत्ती का दीपक जलाना और विशेष तपस्या की स्थापना हेतु प्रतिमा पर पुष्पांजलि क्षेपण करने को कहा है पुनः केवलज्ञान कल्याणक के अन्तर्गत ही पंचकल्याणक मालारोपण, संस्कारमालारोपण के बाद ही अंकन्यास की प्रतिमा का श्लोक दिया है–

विश्वोद्भासि परब्रह्मव्यञ्जकं स्यात्पदांकितम्।
शब्दब्रह्मेति मंत्रालीं न्यसामीह जिनेशिनः।।146।।

इसके बाद मंत्र पढ़कर अंकन्यास करने की पूरी विधि वर्णित है।

(3) प्रतिष्ठाकल्प के अनुसार (श्रीभट्टाकलंक आचार्य द्वारा संग्रहीत-श्रीजिनसेन महास्वामी ग्रंथमाला करवीर से प्रकाशित)–पृष्ठ 192-196 तक 17वें परिच्छेद में वर्णित परिनिष्क्रमणकल्याणविधि-दीक्षाकल्याणक विधि में उपर्युक्त चतुर्वर्तिदीपप्रज्ज्वलन आदि तक क्रिया ही कही है, उसके बाद केवलज्ञान कल्याणक में 48 संस्कार मंत्रों के पश्चात् ही अंकन्यास का वर्णन किया है। यथा-

संस्कारानेवमारोप्य, मंत्रन्यासं करोत्वतः।
विश्वोद्भासि परब्रह्मव्यंजकं स्यात्पदान्वितम्।।38।। (पृ. 200)

(4) प्रतिष्ठाप्रदीप (पं. नाथूलाल शास्त्री-इंदौर द्वारा लिखित) के अनुसार–पृ. 190 पर दीक्षा के अगले–दूसरे दिन आहार क्रिया को सम्पन्न करने के पश्चात् प्रतिमा पर मंत्रन्यास करने की विधि दी है।

विचारणीय विषय है!

कुछ विद्वान् किन्हीं प्रतिष्ठा ग्रंथों के आधार से दीक्षाकल्याणक में यह अंकन्यास विधि सम्पन्न करते हैं, उनके लिए विचारणीय विषय है कि यह विधि करने के बाद भगवान को मुनिराज के रूप में आहारचर्या को कैसे उठाएंगे ? तथा 48 मंत्रों से संस्कारमालारोपण करके किये जाने वाले इस अंकन्यास के पश्चात् गंधयंत्र बनाकर उसकी आराधना एवं तिलकदान आदि विधि सम्पन्न की जाती है एवं अनेक प्रकार की नयनोन्मीलन आदि अन्य विधि भी होती है, जिसका

दीक्षाकल्याणक से कोई संबंध नहीं है।

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी इस संबंध में बताती हैं–

सन् 1957 में आचार्यश्री वीरसागर महाराज (चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टाचार्य) के पास जयपुर-खानिया में पण्डित शिवजी राम जी आए थे, आचार्यश्री से उन्होंने कहा कि प्रतिष्ठातिलक में दीक्षाकल्याणक संबंधी कोई खास विधि नहीं है, मंत्रन्यास नहीं है। इस संबंध में आचार्यश्री ने समाधान दिया कि -चूँकि तीर्थंकर भगवान स्वयं दीक्षा लेते हैं, कोई गुरु उनके मस्तक पर किसी प्रकार के संस्कार नहीं करते हैं इसीलिए तीर्थंकर भगवान की प्रतिमाओं पर दीक्षाकल्याणक में कोई मंत्रों का संस्कार नहीं होना चाहिए। तो उन्होंने ब्र. शीतल प्रसाद द्वारा संकलित ''प्रतिष्ठा विधान संग्रह'' के आधार से बताया कि इस ग्रंथ में दीक्षाकल्याणक के समय अंकन्यास करने को कहा है, उस समय आचार्य श्री वीरसागर जी एवं वहाँ उपस्थित आचार्यश्री महावीरकीर्ति महाराज ने उस ग्रंथ का पुरजोर विरोध करके उसे अमान्य बताया था। उन दोनों ने कहा कि इस ग्रंथ की यह विधि अपनाने से आगे यह परम्परा गलत चल जाएगी।

उसी समय वसुविन्दु प्रतिष्ठापाठ की भी चर्चा आई तो पं. इन्द्रलाल जी शास्त्री ने कहा कि इसमें भी तोड़-मरोड़कर अंकन्यास की विधि दीक्षाकल्याणक में घुसाई गई है एवं इसमें गर्भकल्याणक की विधि अपूर्ण है तथा मोक्षकल्याणक की विधि ही नहीं है।

उस समय आचार्यद्वय (आचार्यश्री वीरसागर महाराज एवं आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी) तथा पं. इन्द्रलाल शास्त्री आदि अनेक विद्वानों का यह निर्णय रहा कि प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ से ही पंचकल्याणक की सम्पूर्ण विधि कराना सर्वोत्तम है। आज भी दक्षिण भारत में सभी विद्वान् एवं भट्टारकगण इसी प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ से ही पंचकल्याणक सम्पन्न कराते हैं और आचार्यश्री की आज्ञा से ब्र. सूरजमल जी भी (वरिष्ठ प्रतिष्ठाचार्य थे) इसी ग्रंथ से सभी प्रतिष्ठाएँ कराते रहे हैं।

केवलज्ञानकल्याणक

तिलकदान विधि–केवलज्ञान कल्याणक में तिलकदान विधि के पश्चात् भगवान के सामने सप्तधान्य स्थापित करने की एक विधि आती है। जैसे–

जिनेश्वर श्रीचरणांबुजाग्रे, सप्तोद्धधान्यानि समुच्चितानि।
अनन्तधर्मेष्वपि संभवन्तीं, अर्हन्तु दिव्यध्वनिसप्तभंगीम्।।3।।

मुखवस्त्रप्रदानपूर्वकं यवमालामारोप्य जिनपदाग्रतः सप्तधान्यान्युपाहरेत्।।

यहाँ मुखवस्त्रप्रदान का अर्थ है भगवान के आगे पर्दा डालना और पर्दे के अन्दर प्रतिमाओं को यवमाला पहनाकर उनके आगे सप्तभंगी के प्रतीक में सप्तधान्य के सात पुंज रखें। कोई-कोई विद्वान् सप्तधान्य रखकर कपड़े की पट्टी भगवान के मुख में बांध देते हैं, सो सर्वथा अनुचित है। ब्र. सूरजमल आदि पुराने विद्वान् कभी भी ऐसा नहीं करते थे।

(25) केवलज्ञानकल्याणक में तिलकदान नामक विधि में स्वर्ण सौभाग्यवती महिला (दम्पत्ति) से विधिवत् शिला पर वस्तुएँ (हल्दी, इलाइची, कंकोल, जायफल, सरसों, चंदन, कपूर आदि) पिसवा कर कल्कचूर्ण तैयार कराया जाता है। वह कल्कचूर्ण स्वर्ण शलाका से सब प्रतिमाओं की नाभि में लगाया जाता है, इसी का नाम तिलकदान विधि है। प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ के अनुसार यही प्राणप्रतिष्ठा कहलाती है, फिर भी वर्तमान में प्राणप्रतिष्ठा का मंत्र पढ़ने एवं सूरिमंत्र देकर प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित करने की परम्परा समाज में प्रचलित है, उसे भी करतेहैं। यहाँ कोई-कोई विद्वान् इस कल्कचूर्ण से अपने तिलक लगवाकर भेंट लेते भी देखे गये हैं, जो सर्वथा अनुचित एवं हास्यास्पद है। यह अर्थ का अनर्थ हो गया है।

(26) समवसरण की रचना शास्त्रीय विधि के अनुसार समतल पर ही बनानी चाहिए। कटनी के ऊपर कटनी बनाकर समवसरण की रचना करना आगम-सम्मत नहीं है अर्थात् समतल गोलाई में सातों भूमियाँ बनाकर आठवीं श्री मण्डपभूमि के मध्य तीन कटनी के ऊपर सिंहासन पर चतुर्मुखी भगवान को अशोक वृक्ष के नीचे विराजमान करना चाहिए। आप इसके लिए तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ का अध्ययन अवश्य करें।

मोक्षकल्याणक

(27) मोक्षकल्याणक की क्रिया में कैलाशपर्वत, सम्मेदशिखर, गिरनार आदि (विधिनायक तीर्थंकर की निर्वाणस्थली के प्रतीक में) बनाकर उसके ऊपर विधिनायक प्रतिमा विराजमान करके जो पूजा कराने अथवा सज्जाति आदि मंत्रों से पुष्प चढ़ाने की प्रक्रिया है, उसे भगवान के सामने थाल रखवाकर इन्द्र-इन्द्राणी से सम्पन्न करावें या आजू-बाजू से करें, किन्तु पीछे सामग्री या पुष्प न चढ़ावें।

(28) मोक्षगमन के समय भगवान के सामने पर्दा डालकर ही भगवान को उठाकर सिद्धशिला गमन का दृश्य दिखाना चाहिए। उस समय सभी लोगों को आँख बंद करके ध्यान या कायोत्सर्ग करने का निर्देश देवें।

(29) मोक्षकल्याणक के पश्चात् अग्निकुमार इन्द्रों द्वारा भगवान के अंतिम

शरीर का अग्निसंस्काररूप हवन पुनः पूर्णाहुति हवन करवाना चाहिए। हवनकुण्ड में बाहर तीनों या चारों तरफ 1-1 स्वस्तिक ही बनावें और हवन कुण्डों के अन्दर अग्निमंडल यंत्र को लालरंग–रोली से ही बनावें।

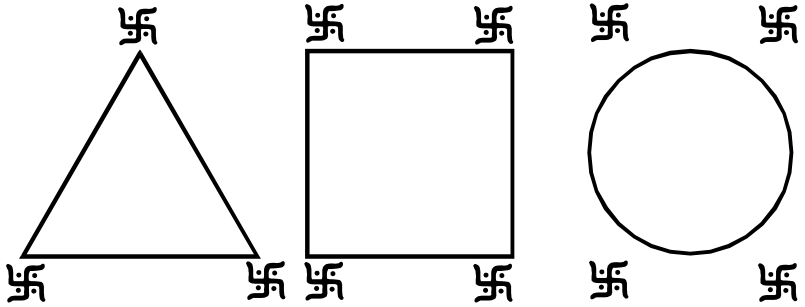

पुनः रथयात्रा या गजरथ आदि का आयोजन भी करने की परम्परा है। उसे सम्पन्न कराकर विधिनायक तथा समस्त प्रतिमाओं अथवा जहाँ विशाल पद्मासन-खड्गासन प्रतिमा विराजमान होती हैं, उनके महामस्तकाभिषेक का कार्यक्रम अवश्य रखना चाहिए।

(30) वेदी में भगवान विराजमान कराते समय मंत्र को मन में बोलना चाहिए, जोर से नहीं। इसी प्रकार जन्मकल्याणक का मंत्र, तिलकदान का मंत्र, नेत्रोन्मीलन का मंत्र भी माइक पर नहीं बोलना चाहिए।

परमपूज्य आचार्यश्री वीरसागर महाराज कहते थे कि मण्डल विधान या पंचकल्याणक आदि में जो मंत्र अनुष्ठान में किये जाते हैं, हवन में उनकी आहुति देते समय उन मंत्रों को मन में ही बोलना चाहिए। 'मत्रि' धातु से गुप्तभाषण अर्थ में मंत्री और मंत्र शब्द बने हैं अतः मंत्रों को गुप्त रखने से उनका फल अधिक प्राप्त होता है।

(31) महामस्तकाभिषेक में जो 1008 कलश या 108 कलश सजाये जाते हैं उनसे चतुष्कोण कलश के समय उसी मंत्र से अभिषेक करावें उसके पश्चात् ही चन्दनलेपन-पुष्पवृष्टि आदि कराना चाहिए, क्योंकि ये कलश चतुष्कोण कलश के प्रतीक में ही होते हैं।

(32) इन समस्त कार्यक्रमों के बाद झण्डा अवतरण कराकर यजमान-याजक तथा देश-राष्ट्र-नृप-प्रजा-समाज आदि के शांति-सुभिक्ष की मंगल कामनापूर्वक प्रतिष्ठा महोत्सव को सम्पन्न करावें।

यहाँ तक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव को सम्पन्न कराने की कुछ

आवश्यक प्रक्रिया एवं संकेत बिन्दु प्रस्तुत किये गये हैं।

इसके अतिरिक्त भगवान ऋषभदेव (आदिनाथ) की विधिनायक प्रतिमा की प्रतिष्ठा हेतु अन्य किञ्चित् प्रेरणाबिन्दु भी यहाँ दृष्टव्य हैं–

ब्राह्मी-सुन्दरी ने दीक्षा क्यों ली ?

(1) ब्राह्मी-सुन्दरी कन्याओं को भगवान ऋषभदेव के द्वारा राज्यावस्था में लिपि एवं अंकविद्या प्रदान करते हुए दिखाना चाहिए और नारी शिक्षा अभियान का शुभारंभ युग की आदि में सर्वप्रथम ऋषभदेव ने किया, इस विषय पर प्रवचन में अच्छा प्रकाश डालना चाहिए।

(2) ब्राह्मी-सुन्दरी ने भगवान के समवसरण में जाकर कुमारी अवस्था में आर्यिका दीक्षा ग्रहण की थी, इस समय में जो दिगम्बर जैन आगम से विरुद्ध किंवदन्ती चल रही है कि हमारे पिता को हमारे पति के पैर छूने पड़ेंगे अथवा पिता को हमारे पति के समक्ष अपनी लघुता प्रदर्शित करनी पड़ेगी..... इत्यादि वार्ता–संवाद को कभी भी प्रस्तुत नहीं करना चाहिए, प्रत्युत् उन तीर्थंकर पुत्रियों के वैराग्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए नारी की गरिमा को भी बतलाना चाहिए–

जो बतलाते नारी जीवन, लगता मधुरस की लाली है।
वह त्याग-तपस्या क्या जाने, कोमल फूलों की डाली है।।
जो कहते योगों में नारी, नर के समान कब होती है।
उन लोगों को ब्राह्मी-सुन्दरि का, जीवन एक चुनौती है।।

आदिपुराण में स्पष्टरूप से देखा जा सकता है कि ब्राह्मी-सुन्दरी ने अपने उत्कट वैराग्य से भगवान ऋषभदेव के समवसरण में आर्यिका दीक्षा धारण किया था तथा ब्राह्मी ने आर्यिकाओं में प्रधान गणिनी पद को प्राप्त किया था।

दूसरी बात यह है कि जो तीर्थंकर भगवान जन्म से ही अपने माता-पिता को भी नमस्कार नहीं करते हैं, न वे विद्यालय में किसी गुरु से पढ़ने जाते हैं तथा वे दीक्षा भी किसी गुरु से न लेकर केवल सिद्धों की साक्षीपूर्वक ग्रहण करते हैं, अर्थात् किसी को अपने जीवन में गुरु नहीं बनाते हैं और किसी मुनि को भी उनके द्वारा नमस्कार करने का कोई उदाहरण दिगम्बर जैन शास्त्रों में नहीं मिलता है, यह उनका नियोग–उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति ही जानना चाहिए, न कि किसी के प्रति उनका अविनयभाव।

ऐसे महान तीर्थंकर प्रभु को अपने दामाद के चरणों में झुकने जैसी तुच्छ बात कहकर ब्राह्मी-सुन्दरी को दीक्षा की ओर अग्रसर होने का ड्रामा कराना वास्तव में तीर्थंकर भगवान एवं उनकी दीक्षित पुत्रियों का अवर्णवाद ही मानना चाहिए।

भरत चक्रवर्ती आदि चक्रवर्तियों की 96 हजार रानियों में से क्या किन्हीं के कन्याएँ नहीं थीं ? और उन कन्याओं के विवाह में क्या चक्रवर्ती अपने दामादों को नमस्कार करेंगे ? यहाँ ध्यान रखें कि वे तो अपने ससुर को भी नमस्कार नहीं करते हैं फिर भला तीर्थंकर जैसे महापुरुष अपनी कन्याओं के पति को नमस्कार कैसे कर लेंगे ?

देखो! सगर चक्रवर्ती के 60 हजार पुत्रों का उल्लेख पुराणों में आता है, तो अगर उनके कन्याएँ नहीं होंगी, तो कन्याओं की कमी हो जावेगी और एक-एक राजाओं के अनेक रानियों की परम्परा कैसे रहती होगी?

भगवान शांतिनाथ आदि तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती भी हुए हैं। क्या उनके कन्याएँ नहीं हुई होंगी ?

अतः तीर्थंकर ऋषभदेव के ब्राह्मी-सुन्दरी कन्याओं का जन्म हुंडावसर्पिणी का अभिशाप नहीं मानना चाहिए।

जो तीर्थंकर विवाहित होते हैं, उनके पुत्र ही हों, पुत्रियाँ न हों, यह कहना संगत नहीं है।

तीसरी बात यह है कि वर्तमान में भी किसी ससुर के द्वारा दामाद के चरण स्पर्श की परम्परा नहीं देखी जाती है, प्रत्युत् दामाद के द्वारा सास-ससुर के (माता-पिता मानकर) चरण स्पर्श करके आशीर्वाद लेने की परम्परा अवश्य देखी जाती है अतः तीर्थंकर भगवान के लिए ऐसे अशोभनीक एवं तथ्यहीन तर्क कहाँ से आए पता नहीं ? जो भी हो, इनकी पुष्टि दिगम्बर जैन विद्वानों/प्रतिष्ठाचार्यों को कभी नहीं करना चाहिए।

कोई विद्वान् कहते हैं कि जब भगवान बाहुबली एक वर्ष तक तपस्या कर रहे थे, तो उनके शरीर पर वृक्ष की लताएँ चढ़ गई थीं, सर्पों ने बामी बना ली थी और बिच्छू-सर्प आदि अनेक जीव-जन्तु उनके शरीर पर चढ़कर क्रीड़ा करते रहते थे, तब बाहुबली की बहनें ब्राह्मी-सुन्दरी जाकर अपने हाथों से उनकी बेल उतारती थीं और उनका शरीर साफ किया करती थीं.....इत्यादि।

यह विषय भी दिगम्बर जैन ग्रंथों के अनुसार पूर्णरूपेण असत्य है। देखो! आदिपुराण ग्रंथ में आया है कि भगवान ऋषभदेव को केवलज्ञान होते ही अयोध्या

के सम्राट भरत को तीन समाचार (केवलज्ञान का, पुत्र जन्म का एवं चक्ररत्न उत्पत्ति का) एक साथ मिले थे, तब भरत सर्वप्रथम भगवान के समवसरण में गये थे। वहाँ भरत के भ्राता वृषभसेन भगवान के प्रमुख गणधर बने, भरत जी प्रमुख श्रोता बने और ब्राह्मी-सुन्दरी ने आर्यिका दीक्षा लेकर प्रथम आर्यिका बनने का सौभाग्य प्राप्त किया था।

इसके पश्चात् भरत ने पुत्र जन्म का उत्सव मनाकर चक्ररत्न को आगे करके दिग्विजय के लिए अयोध्या से प्रस्थान किया और साठ हजार वर्ष तक उन्होंने छहों खण्ड पर विजय प्राप्त की पुनः चक्ररत्न के अयोध्या में प्रवेश न करने के कारण उनका बाहुबली के साथ युद्ध हुआ और युद्ध में विजय प्राप्त करके भी बाहुबली ने दीक्षा लेकर एक वर्ष का तपयोग धारण कर लिया था, उस समय लताएँ उनके शरीर पर चढ़ी थीं, तब साठ हजार वर्ष प्राचीन दीक्षित आर्यिकाएँ क्या उनकी बेल हटाने जाएँगी ? यह कथमपि संभव नहीं है अतः ऐसी आगम विरुद्ध बातें कभी भी अपने प्रवचनों में प्रतिपादित नहीं करना चाहिए।

इस संबंध में आदिपुराण के अन्दर कथन आया है कि विद्याधर देवियाँ आकर बाहुबली के शरीर की बेल आदि हटा-हटाकर स्वच्छ करती थीं फिर भी वे बार-बार आकर प्रभु के शरीर का आलिंगन करती थीं। इस तप के प्रभाव से उनके अन्दर सम्पूर्ण ऋद्धियाँ प्रगट हो गई थीं। हाथी अपनी सूंड में नलिनीदल-कमल के पत्तों में जल लाकर प्रभु के चरणकमलों में चढ़ाते थे.....आदि।

क्या भगवान बाहुबली को शल्य थी ?

''भगवान बाहुबली को यह शल्य थी कि मैं भरत की भूमि पर खड़ा हूँ'' यह बात धड़ल्ले से साधुगण एवं विद्वज्जन अपने प्रवचनों में कहते हैं और पुस्तकों एवं लेखों में लिखते भी हैं। इस विषय को भी आगम के परिप्रेक्ष्य में ही लिखना और बोलना चाहिए।

देखो! शल्य तो तीन प्रकार की होती है– माया, मिथ्या, निदान। तत्त्वार्थसूत्र में कहा है– **''निःशल्यो व्रती''** अर्थात् सच्चा व्रती पुरुष इन तीनों शल्यों से रहित होता है, तो भला महाव्रती सच्चे भावलिंगी, जिनकल्पी महामुनि बाहुबली के मन में ऐसी मिथ्या धारणारूप शल्य कैसे रह सकती थी ? पुनः यदि उनके मन में शल्य होती, तो उन्हें मनःपर्ययज्ञान एवं ऋद्धियाँ ही नहीं प्राप्त हो सकती थीं क्योंकि मनःपर्ययज्ञान और ऋद्धियाँ भावलिंगी मुनि को ही होती हैं।

आदिपुराण (भाग-2) के अनुसार उनके मन में यह विकल्पमात्र था कि- ''चक्रवर्ती भ्राता को मुझसे क्लेश हुआ है।'' बस यही विकल्प उनके केवलज्ञान में बाधक बन रहा था पुनः स्वयं निर्विकल्प होकर क्षपकश्रेणी पर चढ़ते ही ज्यों ही उन्होंने घातिया कर्मों का नाश किया, तत्क्षण ही भरत भी दिव्य सामग्री लेकर उनकी पूजा करने आ गये अतः भरत चक्री का आना और बाहुबली को केवलज्ञान प्राप्त होना एक साथ अनहोना संयोग बन गया।

यह एक विचारणीय बात है कि ऐसे मोक्षगामी महापुरुष महामुनियों में मिथ्यादृष्टियों में संभावित शल्य कैसे मानी जा सकती है ? तथा विकल्परूप छद्मस्थ अवस्था में दशवें गुणस्थान तक विकल्प की संभावना तो रहती ही है अतः शास्त्रीय विधि का पालन करते हुए ''भगवान बाहुबली के शल्य नहीं थी'' यही प्रतिपादन अपने माध्यम से करना चाहिए।

पंचकल्याणक के बाह्य दृश्य

प्रस्तुति—आर्यिका श्री चंदनामती माताजी

(यहाँ पंचकल्याणक के सभी बाह्य दृश्य भगवान ऋषभदेव के आधार से हैं, जहाँ जिन तीर्थंकर की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हो रही हो, वहाँ उन तीर्थंकर का नाम, नगरी, माता-पिता आदि के नामों में परिवर्तन करके दृश्यों को प्रस्तुत करें।)

—सूत्रधार—

तर्ज-रेल चली भई रेल चली.....

शुरू हुआ भाई शुरू हुआ, पंचकल्याणक शुरू हुआ।
आज गर्भ कल्याणक, कल जन्मकल्याणक, दीक्षा ले त्रिभुवन गुरू हुआ।।
शुरू हुआ भाई शुरू हुआ.....।।

गद्य पंक्तियाँ-

सुनो! सुनो! सुनो! मेरे प्यारे भाइयों, बहनों, माताओं, दोस्तों, बुजुर्गों, नन्हे-मुन्नों! सब लोग सुन

जरूर आप सब यही सोच रहे होंगे ये नटखट राम आज क्या संदेशा लाए हैं? तो सुनो! आप सब जिस पवित्र धरती पर बैठे मेरी बातें सुन रहे हैं ना, उसका नाम है-अयोध्या यानी जिसे कोई योद्धा आज तक जीत न सका वह है अयोध्या।

अरे भाई! वैसे तो हम सब अपने नगर के पांडाल में बैठे हैं लेकिन चूँकि अयोध्या का दृश्य यहाँ दिखाया जा रहा है सो कह दिया अयोध्या, जानते हो, शाश्वत जन्मभूमि है यह अयोध्या। यहाँ पर आज से इस युग के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का पंचकल्याणक महोत्सव होने जा रहा है।

अब तक आप लोग यह जान ही गए होंगे कि पंचकल्याणक महोत्सव में क्या-क्या होता है? क्या कहा आपने? भगवान की मूर्ति की प्रतिष्ठा होती है! बिल्कुल ठीक कहा आपने! ये महोत्सव एक-दो दिन में नहीं समाप्त होगा, पूरे पाँच दिन चलेगा। हाँ! कहीं-कहीं तो यह महोत्सव ७-८ दिन तक भी चलता है।

एक बात बताऊँ भैया! यह प्रतिष्ठा महोत्सव एक बहुत ही पवित्र कार्य है इसमें पण्डित जी खूब सारे मंत्र पढ़-पढ़कर पत्थर की मूर्ति को भगवान बना देते हैं। जितनी ज्यादा विधि से प्रतिष्ठा की जाती है उतनी ही अधिक मूर्ति चमत्कारी हो जाती हैं, हाँ!

सुनो! सुनो! आज गर्भकल्याणक है ना! अभी थोड़ी देर में इन्द्र सभा, माता के सोलह सपने आदि सुन्दर-सुन्दर दृश्य दिखाए जाएँगे, आप लोग आराम से बैठ जाओ। अगर कहीं इधर-उधर जाओगे न, तो आपकी जगह चली जाएगी, फिर मुझसे

कुछ मत कहना। अभी स्वर्ग से देवियाँ आकर माता की सेवा करेंगी, उनसे खूब अच्छे-अच्छे प्रश्न पूछेंगी और माता उनका उत्तर देंगी। भैया! मैं तो जरूर सुनूंगा, क्योंकि मुझे कुछ भी तो मालूम नहीं है आज माता के मुँह से सुनकर मेरा भी कुछ ज्ञान बढ़ जाएगा। और हाँ सुनो! कल सुबह खूब जल्दी आ जाना, कल तीर्थंकर भगवान का जन्मकल्याणक है, राजा के दरबार में खूब नृत्य-गीत होंगे, बड़ा मजा आएगा। और हाँ! राजा सबको रत्न बाटेंगे, सब लोग जरूर आना।

अच्छा, तो अब मैं जाता हूँ, अब आप गर्भकल्याणक के अच्छे-अच्छे दृश्य देखो। शुरू हुआ भाई.....(सूत्रधार चला जाता है, पर्दा गिरा दें)

१. गर्भकल्याणक

(मंच पर सामूहिक प्रार्थना का दृश्य)

पुरुदेव की वाणी अखिल विश्व में, अमृतकण बरसाये।
पुरुदेव की वाणी.....।।टेक.।।

युग की आदी में ऋषभदेव ने, यहाँ पुण्य अवतार लिया।
माता मरुदेवी के आँगन में, उत्सव अपरम्पार हुआ।।
आये हैं इन्द्र सभी मिलकर, भक्ती से अति हरषाये।
पुरुदेव की वाणी.....।।१।।

इस जम्बूद्वीप के मध्य सुदर्शन-मेरु सुवर्णमयी सुन्दर।
है एक लाख योजन ऊँचे पर, पांडुकशिला बनी मनहर।।
जिन शिशु को सुरपति ले जाकर, वहाँ पर अभिषेक रचाएँ।
पुरुदेव की वाणी.....।।२।।

जो चन्द्रकिरण चंदन गंगाजल से भी है शीतल वाणी।
यह अनेकांतमय सत्य अहिंसा, धर्मरूप है जिनवाणी।।
तुम कर्णपुटों से पियो इसे, सब जन्म रोग नश जाये।।
पुरुदेव की वाणी.....।।३।।

घट-घट का अज्ञान अंधेरा, उसको दूर भगाती है।
जन-जन के मानस मंदिर मे, यह ज्ञान की ज्योति जलाती है।
तुम पूर्ण 'ज्ञानमती' प्रगट करो, जिससे अशेष दुःख जाये।
पुरुदेव की वाणी.....।।४।।

(द्वितीय दृश्य)

स्वर्ग में सौधर्म इन्द्र की सुधर्मा सभा का दृश्य

(इन्द्र का आसन कम्पायमान)

(एक नृत्य)

स्थान—**इन्द्रसभा**

(सौधर्म इन्द्र अपने सिंहासन पर बैठे हुए हैं। पास में अनेक देवगण बैठे हुए हैं। इन्द्रसभा लगी हुई है।)

इन्द्र—(प्रसन्न मुद्रा में) जय हो! तीर्थंकर भगवान की जय हो। हे इन्द्रों! हमें आज मध्यलोक चलना है।

शचि इन्द्राणी—**स्वामिन! किसलिए?**

इन्द्र—**देवी! इसलिए कि जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में आज से छह महीने बाद तीर्थंकर भगवान स्वर्ग से मध्यलोक में अवतार लेने वाले हैं। अतः हे धनकुबेर! सुनो, आप वहाँ जाकर उस आर्यखण्ड की अयोध्या नगरी को इतनी सुन्दर सजा दो कि वह सुवर्णमयी दिखने लगे।**

कुबेर—**अहो! हमारे बहुत पुण्य का उदय आया है जो आज ऐसा पुण्य अवसर मिला है।**

इन्द्र—**हाँ! तीर्थंकर प्रभु के कल्याणक मनाने का अवसर मिलना महान पुण्य का सुयोग है। हे धनपते! आप आज से ही वहाँ माता मरुदेवी के आँगन में उत्तम-उत्तम रत्नों की वर्षा शुरू कर दो।**

कुबेर—(हाथ जोड़कर) **जो आज्ञा आपकी।**

(कुबेर द्वारा रत्नवृष्टि हेतु जाना)

(पर्दा गिरता है)

(तृतीय दृश्य)

(राजमहल में रत्नों की वृष्टि हो रही है, स्वर्ग से धनकुबेर अयोध्या नगरी में आकर उत्तम-उत्तम रत्नों की वर्षा कर रहा है। चारों ओर खुशी का वातावरण है। सभी लोग आपस में चर्चा कर रहे हैं।)

एक आदमी—**देखो, देखो! चारों ओर कैसे रत्न बांटे जा रहे हैं, हमारी अयोध्या नगरी कितनी सुन्दर लग रही है।**

दूसरा—**हाँ सो तो है! लेकिन भाई! यह तो बताओ कि ये रत्नवृष्टि क्यों हो रही है?**

पहला—**अरे भाई! कमाल है! तुम्हें यह भी नहीं मालूम! अपने महाराज नाभिराय हैं न! उनकी रानी मरुदेवी के तीर्थंकरपुत्र उत्पन्न होने वाला है।**

दूसरा—**क्या कहा? पुत्र उत्पन्न होने वाला है! लेकिन इस व्यक्ति को कैसे मालूम हुआ? (धनकुबेर की ओर इशारा करते हुए)**

पहला—**ये कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। ये स्वर्ग से आए धनकुबेर हैं।**

दूसरा—**धनकुबेर! मुझे ठीक से बताओ।**

पहला—**सुनो! सौधर्मइन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से सब कुछ जानकर इन कुबेर जी को यहाँ रत्नवृष्टि करने भेजा है।**

दूसरा—**अच्छा, तो ये बात है! हाँ भाई, आखिर भगवान जी जन्म लेने वाले हैं।**

पहला—**हाँ, अब से पन्द्रह महीने बाद हम भी तीर्थंकर बालक को गोद में खिलायेंगे। (वहीं खड़ी एक स्त्री, जो कि अब तक सब सुन रही थी, चौंक पड़ी और बोली)**

स्त्री—**क्या कहा? पन्द्रह महीने बाद?**

पुरुष—**हाँ, अब से छह महीने बाद प्रभु गर्भ में आयेंगे पुनः नव महीने बाद जन्म लेंगे।**

दूसरा पुरुष—**तो क्या पन्द्रह महिने तक रोज ही ऐसे रत्नों की वर्षा होती रहेगी?**

पहला पुरुष—**हाँ भाई! यही तो तीर्थंकर प्रभु की महिमा है।**

तीसरा पुरुष—**देखो! जन्म लेने से पहले ही जब इतना अतिशय है तो जन्म लेने के बाद तो कितना मजा आएगा।**

(चतुर्थ दृश्य)

(महाराज नाभिराज का ८१ खन ऊँचा महल, रात्रि का पिछला प्रहर है। महारानी मरुदेवी शयनकक्ष में निद्रामग्न हैं। तभी पिछले प्रहर में रानी एक, दो नहीं पूरे सोलह स्वप्न देखती हैं मंच पर सोलह स्वप्नों को पेन्टिंग के चित्रों में दिखाया जाता है। यहीं पर प्रतिष्ठाचार्य पृष्ठ ६६ से माता के १६ स्वप्नों को पद्य में प्रस्तुत करें। देवियाँ उन्हें मधुर संगीत के साथ जगाती हैं।)

प्रातः प्रसन्नमुद्रा में उठकर हाथ जोड़कर प्रभु को नमस्कार करती हैं-

रानी मरुदेवी—ॐ नमः सिद्धेभ्यः। णमो अरिहंताणं.....(आस-पास चारों ओर अष्ट दिक्कुमारियाँ खड़ी हुई हैं, रानी को प्रसन्नचित्त देखकर पूछती हैं।)

देवी—**महारानी की जय हो! रानी जी! आज आप बहुत खुश लग रही हैं, क्या बात है?**

महारानी—**हाँ देवी! बात ही कुछ ऐसी है।**

दूसरी देवी—(उत्सुकता से) जल्दी कहिए, महारानी जी!

महारानी—सुनो! आज रात्रि में मैंने सोलह स्वप्न देखे हैं।

देवियाँ—(चौंककर एक साथ) क्या महारानी जी! सोलह स्वप्न देखे हैं आपने!

महारानी मरुदेवी—(हँसती हुई) हाँ, हाँ मैंने ठीक से गिने थे, पूरे सोलह सपने थे।

देवी—(हाथ जोड़कर) रानी जी, अब जल्दी से उन स्वप्नों के बारे में बता दीजिए।

महारानी मरुदेवी—इतनी आतुर मत होओ, सुमंगला! अभी स्नान वगैरह करके महाराज के पास चलते हैं, वहीं तुम भी सुन लेना।

(देवियाँ रानी को हंसी-खुशी स्नानादि करवाती हैं पुनः तैयार होकर महारानी दरबार में प्रवेश करती हैं)

(दरबार का दृश्य, राजा सिंहासन पर बैठे हैं प्रजाजन यथास्थान बैठे हैं, महारानी सखियों सहित प्रवेश करती हैं प्रजा के लोग अपने स्थान पर खड़े होकर महारानी का सम्मान करते हैं।)

सामूहिक स्वर—महारानी की जय हो! रानी मरुदेवी की जय हो!

(रानी अपने आसन पर बैठ जाती हैं, प्रजा के लोग भी यथास्थान बैठ जाते हैं)

महाराजा नाभिराय—कहिए महारानी जी! आप ठीक हैं न!

मरुदेवी—हाँ स्वामिन्! मैं बिल्कुल ठीक हूँ और आपकी कुशलता की कामना करती हूँ।

नाभिराय—आज कोई खास बात है क्या? आज सुबह-सुबह राजदरबार में आपका पधारना कैसे हुआ है?

मरुदेवी—हाँ स्वामी! बात ही कुछ ऐसी थी कि मुझे राजदरबार में सुबह-सुबह आना पड़ा।

नाभिराय—कहिय प्राणप्रिये! आप क्या कहना चाहती हैं?

मरुदेवी—(प्रसन्न मुद्रा में) प्राणनाथ! आज रात्रि में मैंने सपने देखे हैं।

नाभिराय—तो क्या हुआ देवी! सपने तो रोज सभी देखते हैं।

एक देवी—(बीच में ही) यही तो आपको बताने आई हैं ये। इन्होंने एक नहीं, दो नहीं पूरे सोलह सपने देखे हैं।

नाभिराय—(आश्चर्य से) सोलह सपने! जरा मैं भी तो सुनूँ उन सोलह स्वप्नों की कहानी!

मरुदेवी—हाँ महाराज! सुनिये! पहले स्वप्न में मैंने बहुत बड़ा सफेद ऐरावत हाथी देखा है, जो कि सुन्दर गर्जना कर रहा है।

नाभिराय—देवि! तुमने जो ऐरावत हाथी देखा है उसका फल यह है कि 'तुम त्रिभुवन के गुरु ऐसे तीर्थंकर पुत्र को जन्म दोगी।'

मरुदेवी—दूसरे स्वप्न में मैंने उत्तम बैल देखा है, जो कि अपने पदप्रहार से पृथ्वी को कँपा रहा है।

नाभिराय—स्वप्न में बैल के देखने से तुम्हारा पुत्र समस्त विश्व में श्रेष्ठ होगा।

मरुदेवी—तीसरे स्वप्न में मैंने पीली-पीली अयाल वाला उत्तम सिंह देखा है।

नाभिराय—देवि! स्वप्न में सिंह के देखने से तुम्हारा पुत्र अनंत बल से सहित होगा।

मरुदेवी—हे स्वामिन्! मैंने चौथे स्वप्न में लक्ष्मी को देखा है, जो कमल के आसन पर बैठी हैं और देवों के हाथी सुवर्ण कलशों से उसका अभिषेक कर रहे हैं।

नाभिराय—देवि! अभिषेक को प्राप्त होती हुई लक्ष्मी को देखने से वह पुत्र सुमेरु पर्वत के मस्तक पर देवों के द्वारा अभिषेक को प्राप्त होगा।

मरुदेवी—पाँचवें स्वप्न में सुन्दर और सुगंधित फूलों की दो मालाएँ देखी हैं।

नाभिराय—हे देवि! स्वप्न में मालाओं के देखने से तुम्हारा पुत्र सच्चे धर्मतीर्थ का चलाने वाला होगा।

मरुदेवी—छठे स्वप्न में पूर्ण चन्द्रमा देखा है, जिसको चारों तरफ से तारा मंडल घेरे हुए हैं और जिसकी पूर्ण चाँदनी छिटक रही है।

नाभिराय—पूर्ण चन्द्रमा देखने से वह समस्त लोगों को परम आनंद देने वाला होगा।

मरुदेवी—सातवें स्वप्न में उगता हुआ सूर्य देखा है।

नाभिराय—देवि! तुम्हारा पुत्र भी सूर्य के समान देदीप्यमान प्रभा का धारक होगा।

मरुदेवी—स्वामिन्! आठवें स्वप्न में मैंने सुवर्ण के दो कलश देखे हैं जिन पर कमल रखे हुए हैं।

नाभिराय—प्रिये! दो कलशों के देखने से वह पुण्यरूप अनेक निधियों का स्वामी होगा।

मरुदेवी—नाथ! नवमें स्वप्न में मैंने कुमुद और कमलों से शोभायमान ऐसे तालाब में क्रीड़ा करती हुई दो मछलियाँ देखी हैं।

नाभिराय—देवि! मछलियों के देखने से सुख सरोवर में अवगाहन करने वाला होगा।

मरुदेवी—दशवें स्वप्न में सरोवर देखा है, जिसके पानी के ऊपर कमलों की केसर फैल जाने से ऐसा लगता था मानों पिघला हुआ सुवर्ण ही चमक रहा हो।

नाभिराय—इस तालाब के देखने से वह महापुरुष अनेक लक्षणों से शोभित होगा।

मरुदेवी—ग्यारहवें स्वप्न में मुझे ऐसा विशाल समुद्र दिखा है कि जो उठती हुई लहरों से मानों अट्टाहस कर रहा है।

नाभिराय—समुद्र के देखने से वह पुत्र अपने ज्ञान को पूर्ण कर केवलज्ञानी बनेगा।

मरुदेवी—बारहवें स्वप्न में मुझे ऐसा स्वर्णमयी सिंहासन दिखा है कि जिसमें अनेक प्रकार के चमकीले मणि जड़े हुए हैं।

नाभिराय—इस दिव्य सिंहासन के देखने से वह जगत् का गुरु होकर साम्राज्य को प्राप्त करेगा।

मरुदेवी—तेरहवें स्वप्न में मैंने स्वर्ण का विमान देखा है जो कि बहुमूल्य श्रेष्ठ रत्नों से देदीप्यमान हो रहा है।

नाभिराय—देवविमान देखने से वह स्वर्ग से अवतीर्ण होगा।

मरुदेवी—चौदहवें स्वप्न में मुझे पृथ्वी को भेदन कर आता हुआ नागेन्द्र भवन दिखा है।

नाभिराय—हे सुमुखि! नागेन्द्र भवन के देखने से वह पुत्र अवधिज्ञानरूपी लोचनों से सहित होगा।

मरुदेवी—पंद्रहवें स्वप्न में मैंने रत्नों की राशि देखी है, जिसकी किरणों से आकाश में इन्द्रधनुष की शोभा-सी बन गई थी।

नाभिराय—देवि! इन चमकते हुए रत्नों के ढेरे के देखने से वह पुत्र अनेक गुणरत्नों की खान होगा।

मरुदेवी—हे देव! सोलहवें स्वप्न में मैंने जलती हुई प्रकाशमान धूमरहित अग्नि देखी।

नाभिराय—प्रिये! इस निर्धूम अग्नि के देखने से तुम्हारा पुत्र कर्मरूपी ईंधन को जलाने वाला होगा।

(इस प्रकार महारानी, महाराज को सोलह स्वप्नों के बारे में बताती हैं पुनः कहती हैं)

मरुदेवी—हे नाथ! स्वप्नों के अंत में मैंने देखा कि एक सुन्दर सा बैल मेरे मुख में प्रवेश कर रहा है।

नाभिराय—इसका अर्थ यह है कि तुम्हारे पवित्र गर्भ में तीर्थंकर का जीव अवतीर्ण हो चुका है। (इस प्रकार सभी प्रजाजन भी हर्ष से पुलकित हो उठते हैं, देवियाँ भी हर्ष से रोमांचित हो जाती हैं तथा महारानी मरुदेवी के साथ अठखेलियाँ

करते हुए उन्हें अन्तःपुर में ले जाती हैं)

स्वर्ग से देवतागण आकर गर्भकल्याणक महोत्सव मनाते हैं। श्री, ह्री, धृति आदि देवियाँ माता की सेवा कर रही हैं, उनसे अनेक-अनेक प्रश्न करके माता का मनोरंजन कर रही हैं। (माता और देवियों के पद्यमय संवादों को पृष्ठ ५० से प्रस्तुत करें)

पुनः गर्भ कल्याणक के सामूहिक गीत-नृत्य के साथ (पृष्ठ ५८ पर है) प्रथम दिवस का कार्यक्रम सम्पन्न करें।

२. जन्मकल्याणक

भगवान का जन्मकल्याणक दिखाने से पूर्व इस दृश्य को मंच पर दिखाएँ

(पंचम दृश्य)

(चैत्र वदी नवमी का शुभ दिवस है। माता मरुदेवी ने तीर्थंकर बालक को जन्म दिया है। सम्पूर्ण अयोध्या नगरी इन्द्रों ने स्वर्ग जैसी सजाई है। सब तरफ मुंह-मांगा धन बँट रहा है। सब तरफ ढोल, नगाड़े बज रहे हैं।)

स्वर्ग का दृश्य—स्वर्ग में सौधर्म इन्द्र अपने अवधिज्ञान से तीर्थंकर का जन्म हुआ जानकर अपने सिंहासन से उतरकर सात पैर आगे बढ़कर परोक्ष में प्रभु को नमस्कार करते हैं पुनः आदेश देते हैं—

सौधर्म इन्द्र—स्वर्ग में रहने वाले मेरे सभी देव भाइयों! सुनो! चलो ऐरावत हाथी को खूब सुन्दर सजा दो, हम सब मध्यलोक चलेंगे।

देव—जो आज्ञा सौधर्मेन्द्र!

(सौधर्म इन्द्र ऐरावत हाथी पर बैठकर अपने विशाल देवपरिकर के साथ नाचते-झूमते मध्यलोक पहुँचते हैं)

—अयोध्या नगरी में नाभिराय के महल का दृश्य—

देवों का सामूहिक स्वर—तीर्थंकर ऋषभदेव की जय हो! अयोध्या तीर्थ की जय हो! महाराजा नाभिराय की जय हो! महारानी मरुदेवी की जय हो!

सौधर्म इन्द्र—(पिता नाभिराय से) महाराज! हमें भी प्रभु का जन्मोत्सव मनाने की आज्ञा प्रदान कीजिए।

पिता नाभिराय—(खुशी से) हाँ हाँ क्यों नहीं! देवराज! हमारे लिए इससे ज्यादा खुशी की और क्या बात है!

सौधर्म इन्द्र—(शची इन्द्राणी से) हे देवि! आप प्रसूतिगृह में जाकर जिनशिशु का

प्रथम दर्शन करो और अपनी स्त्रीलिंग का छेद करके अपने जन्म को सफल करो। और हाँ! जल्दी ही शिशु को लेकर आना, मैं भी दर्शन करके अपने नेत्रों को सफल करूँगा और प्रभु को सुमेरु पर्वत पर ले जाकर जन्माभिषेक करूँगा।

(शची इन्द्राणी बहुत धीरे-धीरे (संगीत ध्वनि के साथ) अंदर जाती हैं और सो रही माता मरुदेवी को मायामयी निद्रा में सुला देती हैं और उनके पास एक मायामयी बालक को सुलाकर जिनशिशु को गोद में उठा लेती हैं और खूब जी भरकर प्रभु को देखती हैं और फिर बाहर आती हैं, इन्द्र देखते ही आगे बढ़ते हैं)

सौधर्म इन्द्र—लाओ, लाओ देवी!, जल्दी से मैं प्रभु का दर्शन करूँ।

शची इन्द्राणी—हाँ हाँ अभी देती हूँ, अभी मेरा जी नहीं भर रहा है।

सौधर्म इन्द्र—(मनुहार करते हुए) हे देवी! अब मेरी आकुलता बढ़ती जा रही है, जल्दी से मुझे जिन बालक को दे दो।

(शची से बालक लेकर इन्द्र झूम उठता है और नाच-नाचकर गाने लगता है)

नाम तिहारा तारनहारा, कब तेरा दर्शन होगा।
तेरी प्रतिमा इतनी सुन्दर, तू कितना सुन्दर होगा।।
जाने कितनी माताओं ने, कितने सुत जन्मे हैं।
पर इस वसुधा पर तेरे सम, कोई नहीं बने हैं।।
पूर्व दिशा में सूर्यदेव सम, सदा तेरा सुमिरन होगा।
तेरी प्रतिमा इतनी सुन्दर, तू कितना सुन्दर होगा।।

(इस प्रकार नाचते-गाते इन्द्र तीर्थंकर शिशु को लेकर ऐरावत हाथी पर बैठकर सुमेरु पर्वत की ओर चल पड़ते हैं, अनेक देव, देवियाँ चंवर ढुराते जा रहे हैं। ऐसा सुन्दर दृश्य! जो कि पहले किसी ने नहीं देखा।)

इस प्रकार विशाल वैभव के साथ सभी लोग सुमेरु पर्वत के पास पहुँचते हैं। सौधर्म इन्द्र ऐरावत हाथी से उतरकर शिशु को सुमेरु पर्वत की पाण्डुक शिला पर बैठा देते हैं, सभी देवगण ऊपर से नीचे तक पंक्ति में खड़े हो जाते हैं। सभी के हाथों में बड़े-बड़े कलशों में क्षीरोदधि का प्रासुक जल है। जयजयकार की ध्वनि के साथ ही क्रम-क्रम से १००८ कलशों से अभिषेक सम्पन्न हो रहा है।

(अभिषेक के पश्चात् शची इन्द्राणी शिशु को सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण पहनाती है जो कि वो स्वर्ग से लाई थी पुनः सब लोग गाते-बजाते वापस अयोध्या नगरी आ जाते हैं। बालक को शची इन्द्राणी माता मरुदेवी के हाथों में सौंप देती हैं, माता मरुदेवी बालक को लेकर बार-बार चूमती हैं। बालक को कहीं नजर न लग जाए,

इस डर से काला टीका लगा देती हैं। पुनः पलने में झुलाती हैं बालक को। (यह पालने का दृश्य प्रायः रात्रि में दिखाया जाता है)

पालना गीत—आदीश्वर झूले पालना, मरुदेवी लोरी गावें.....(पृष्ठ ८५ से पढ़ें)

(धीरे-धीरे समय बीतता गया, प्रभु बड़े होने लगे, पहले धरती पर सरकना शुरू किया, पुनः चलना शुरू किया और अपनी तोतली भाषा में सबका मन बहलाने लगे। (यहाँ पर भगवान महावीर की बाल सभा एवं सर्प क्रीड़ा का दृश्य पृष्ठ ७७ से दिखावें)

(पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में विधिनायक से अतिरिक्त चूंकि अन्य तीर्थंकरों की प्रतिष्ठेय प्रतिमाएं भी रहती हैं अतः महावीर की बाल सभा एवं सर्प क्रीड़ा भी दिखाई जा सकती है।)

युवराज ऋषभदेव का राजदरबार

दीक्षाकल्याणक के दिन प्रातः इस दृश्य को मंच पर प्रस्तुत करावें

इस प्रकार प्रभु जब युवावस्था को प्राप्त हुए, तब स्वयं ही सभी विद्याओं और कलाओं में निष्णात हो गये। एक बार की बात है, प्रजा घबराई-घबराई सी राजा नाभिराय के दरबार में पहुँचती है)

सामूहिक स्वर—महाराज की जय हो! महाराज की जय हो!

महाराजा नाभिराय—क्या बात है भाइयों! आप लोग इतने परेशान क्यों हैं? सब कुशल तो है?

प्रजा—महाराज! कल्पवृक्षों ने फल देना बंद कर दिया है, अब आप ही बताइए कि हम क्या करें, क्या खाएँ?

नाभिराय—ठीक है प्रजा जनो! अब आप लोग युवराज ऋषभदेव के पास जाइए, वे ही इसका समाधान करेंगे।

(प्रजा युवराज ऋषभ कुमार के पास जाती है और कहती है)

प्रजा—तीर्थंकर युवराज की जय हो! स्वामी! आप बताएं कि हम अब क्या करें, कैसे जिएँ?

भगवान ऋषभदेव—(अपने अवधिज्ञान से जानकर) हाँ हाँ भाइयों! मैं तुम लोगों की समस्या को समझ गया हूँ। अब तुम लोग चिंता मत करो। कल्पवृक्ष चले गये तो क्या हुआ? वृक्ष तो हैं ही! अब इन्हीं से जीवनयापन करना मैं सिखाऊँगा।

प्रजा—लेकिन भगवन्! इन वृक्षों के पास खड़े होकर मांगने से कुछ मिलता ही

नहीं है।

ऋषभदेव—प्रजाजनों! अब आप लोगों को भोगभूमि से कर्मभूमि की ओर आना है। अब मैं तुम्हें खेती आदि करना बताता हूँ।

प्रजा—(सामूहिक स्वर में) ठीक है प्रभु! हम सब तैयार हैं।

(बस, यहाँ से मानव अपने पुरुषार्थपूर्वक जीवन का संचालन करने लगा। भगवान ऋषभदेव ने स्वयं ही उन्हें असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन छह क्रियाओं को करना सिखाया, जो आज तक भी चल रही हैं, धीरे-धीरे समय बीतता गया.....)

(एक बार महाराजा नाभिराय ने अपने मन में चिन्तन किया कि ऋषभदेव चूंकि विषयों के प्रति उदासीन हैं फिर भी इनके विवाह हेतु किसी योग्य कन्या का विचार करना चाहिए, ऐसा चिन्तन करके वे मंत्रियों से कहते हैं)—

महाराजा नाभिराय—मंत्रियों! हमें ऋषभदेव के पास चलना है।

मंत्री—चलिए महाराज!

(महाराज नाभिराय ऋषभदेव के निकट पहुँचते हैं। वे आसन पर बैठे थे, उठकर खड़े हो जाते हैं पुनः दोनों यथायोग्य आसन पर बैठ जाते हैं। सिंहासन आजू-बाजू एक समान रक्खे हैं।)

महाराजा नाभिराय—हे देव! में आपसे कुछ कहना चाहता हूँ।

ऋषभदेव—कहिए पिताजी!

महाराजा नाभिराय—देव! अब आप इस संसार की सृष्टि की ओर अपनी बुद्धि लगाइए और किसी इष्ट कन्या के साथ विवाह कीजिए। यह विवाह कार्य गृहस्थों का एक धर्म है। यदि आप मुझे किसी भी तरह से बड़ा मानते हैं तो आपको मेरे वचन उल्लंघन नहीं करने चाहिए।

(इतना कहकर महाराजा नाभिराय चुप हो गये, तब ऋषभदेव बोले)

ऋषभदेव—(मुस्कुराते हुए) ओम्।

(उसी समय सौधर्म इन्द्र आदि आ जाते हैं और भगवान ऋषभदेव द्वारा विवाह की स्वीकृति पाकर अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं।)

सभी तरफ विवाह की जोरदार तैयारियाँ चल रही हैं। शुभ दिन में युवराज ऋषभदेव का विवाह कच्छ, महाकच्छ राजाओं की बहनें यशस्वती और सुनन्दा नाम की दो सुन्दर कन्याओं से हो जाता हैं। धीरे-धीरे समय बीतता गया.....रानी यशस्वती ने भरत आदि सौ पुत्र एवं एक पुत्री ब्राह्मी को तथा रानी सुनन्दा ने एक

पुत्र बाहुबलि और एक पुत्री सुन्दरी को जन्म दिया। पिता नाभिराय भी पुत्र-पौत्रों के साथ सुख में मग्न हैं) (यहाँ ब्राह्मी-सुन्दरी के रूप में किन्हीं दो कुमारी कन्याओं को ऋषभदेव के द्वारा अक्षर और अंक लिपि का ज्ञान कराते हुए दिखावें तथा भरत-बाहुबली आदि पुत्रों को धनुष विद्या आदि सिखाते हुए दिखा सकते हैं)

३. दीक्षाकल्याणक

(छठा दृश्य)

राजदरबार में सामूहिक नृत्य के पश्चात् ३२ मुकुटबद्ध राजाओं का आगमन आदि दिखावें—

एक दिन नाभिराय विचार करते हैं कि अब मुझे राजमुकुट त्याग करके ऋषभदेव का राज्यतिलक करना चाहिए। ऐसा सोचते ही उन्होंने घोषणा कर दी-

नाभिराय—सभासदों! अब मैंने निश्चय किया है कि मैं अपना राजमुकुट उतारकर पुत्र ऋषभदेव को दे रहा हूँ मुझे आशा है कि आप सब सहमत होंगे।

प्रजा ने जयजयकार के द्वारा सहमति प्रदान की और शुभ मुहूर्त में ऋषभदेव का राज्याभिषेक हुआ। प्रजा खुशी से गीत गा रही है—(यहाँ पृष्ठ ८७ से सामूहिक गीत-नृत्य प्रस्तुत करें)

(राजदरबार का दृश्य-पुनः किसी दिन ऋषभदेव सिंहासन पर आरूढ़ हैं, सभी लोग प्रसन्न हैं तभी इन्द्र ने नृत्य के लिए ऐसी नीलांजना नर्तकी को प्रस्तुत किया जिसकी आयु बहुत थोड़ी है। नृत्य करते-करते वह नीलांजना नर्तकी आयु पूर्ण होने पर अदृश्य हो गई और उसकी जगह वैसी ही दूसरी देवांगना उपस्थित हो गई, नृत्य बराबर चलता रहा, कोई भी इस रहस्य को नहीं जान सका लेकिन प्रभु को सब पता लग गया और उनके हृदय में वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित हो गए)

ऋषभदेव—बस, बस, बंद कर दो ये नृत्य और संगीत। ओह! मैं समझ गया। ये वैभव, ये राज्यलक्ष्मी सब क्षणभंगुर हैं। अब मैं दीक्षा धारण करके अपना जन्म सफल करूँगा।

(उनके मन में वैराग्य भाव उत्पन्न होते ही स्वर्ग से ब्रह्मर्षि के रूप में लौकांतिक देव प्रभु के वैराग्य की अनुमोदना करने हेतु राजसभा में प्रगट हो जाते हैं।)

लौकान्तिक देवों के पाठ

आठ बालकों को सफेद धोती-दुपट्टा पहनाकर लौकांतिक देव के रूप में राजसभा में प्रस्तुत करें, वे लौकांतिकदेव दोनों हाथों से भगवान के समक्ष पीले चावल की पुष्पांजलि डालते हुए हाथ जोड़कर निम्न प्रकार से अपने-अपने अभिमत प्रस्तुत करें—

१. सारस्वत देव —**हे युगादिपुरुष! आपने जो दीक्षा का विचार बनाया है, सो बहुत ही उत्तम है। अठारह कोड़ाकोड़ी सागर के बाद इस भरतक्षेत्र में अब आप मोक्षमार्ग को खुला करेंगे इसलिए आप ही मुक्तिपथ के विधाता-निर्माता हैं।**

२. आदित्य देव —**हे युगस्रष्टा! विश्व के सभी प्राणी मोहरूपी अंधकार में सोये हुए हैं, उन्हें ज्ञानप्रकाश देकर मुक्तिमार्ग में ले चलने वाले उनके नेता आप ही हैं अतः आपको मेरा शत-शत नमन है।**

३. बन्हि देव —**युग के प्रथम अवतार ऋषभदेव भगवान्! अब आप तपरूपी अलंकारों से सुसज्जित होकर मुक्तिकन्या के स्वयंवर मण्डप में प्रवेश करने जा रहे हैं सो हम आपके वैराग्य की अनुशंसा करते हैं।**

४. अरुणकुमार देव —**हे प्रभो! आप स्वयं ज्ञानवान् होने से स्वयंबुद्ध कहलाते हैं। आप भगवान हैं फिर भी हम लोग जो आपके वैराग्य की अनुमोदना कर रहे हैं सो यह हम लोगों का नियोगमात्र है।**

५. गर्दतोय देव —**भगवन्! हम लोग तो केवल आपकी प्रशंसा और स्तुति ही कर सकते हैं न कि आपको सम्बोधन! हम लोग तो आपसे सम्बोधन प्राप्त करने की प्रतीक्षा ही कर रहे हैं।**

६. तुषित देव —**पुरुदेव! आज हम लोग आपके दीक्षा कल्याणक में भाग लेकर धन्य हो गये हैं।**

७. अव्याबाध देव —**हे युगस्रष्टा! आप जिस प्रकार से राज्य अवस्था में सबसे श्रेष्ठ और ज्येष्ठ हैं उसी प्रकार से मोक्षमार्ग में प्रवर्तन करने से आप सर्वश्रेष्ठ महापुरुष के रूप में जाने जायेंगे।**

८. अरिष्ट देव —**भगवन्! आपके वैराग्य से अब न जाने कितने भव्य प्राणियों का उद्धार होने वाला है। प्रभु! आपकी जय हो! जय हो! जय हो!।**

भगवान की आहारचर्या

(केवलज्ञान कल्याणक के दिन प्रातः भगवान की आहारचर्या से कुछ क्षण पूर्व मंच पर यह दृश्य सहप्रतिष्ठाचार्य प्रस्तुत करावें—

(सूत्रधार द्वारा)

बंधुओं!

कल्पना कीजिए उस युग की, जब आज से कोड़ाकोड़ी सागर वर्ष पूर्व भारत देश की इस पुण्य धरा पर देवाधिदेव १००८ भगवान ऋषभदेव ने जन्मावतार लिया था। भगवान ऋषभदेव के समय इस धरती से कल्पवृक्ष लुप्तप्राय हो गये, तब भगवान ऋषभदेव ने प्रजा को असि, मसि, कृषि आदि शिक्षाएं प्रदान कीं, जिससे वह सुख से अपना जीवनयापन कर सकें। एक दिन राजदरबार में नीलांजना का नृत्य हो रहा था। महाराजा ऋषभदेव के साथ अन्य दरबारीगण भी बैठे उस नृत्य को देख रहे थे तभी बीच में ही नीलांजना की आयु समाप्त हो जाती है। सौधर्म इन्द्र अपनी विक्रिया से बिल्कुल वैसी ही दूसरी नीलांजना उसी क्षण उपस्थित कर देता है। कोई कुछ नहीं जान पाता परन्तु भगवान ऋषभदेव उस संपूर्ण क्रिया को जान लेते हैं और उन्हें जीवन की क्षणभंगुरता का अहसास हो जाता है, उन्हें वैराग्य हो जाता है और भगवान ऋषभदेव तपस्या करने के लिए प्रयाग नाम के वन की ओर प्रस्थान कर जाते हैं। अपने सारे वस्त्राभूषण का त्यागकर, पंचमुष्टि केशलोंच कर वटवृक्ष के नीचे छः माह का योग धारण करके खड़े हो जाते हैं, ध्यान मग्न हो जाते हैं।

छः माह के योग धारण करने के पश्चात्, जब भगवान आहार के लिए निकले तो पुनः उन्हें ६ माह ३९ दिनों तक कहीं आहार नहीं मिला, इस प्रकार उनका १ वर्ष ३९ दिन तक निर्जल उपवास हो गया। किन्तु उनके शरीर में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं आई क्योंकि वे तो तीर्थंकर प्रभु के अवतार थे न। बंधुओं! उस समय भी ऐसा नहीं था कि कोई उन्हें आहार नहीं देना चाहता था अपितु किसी को आहारदान की विधि ही नहीं मालूम थी और आपको तो मालूम ही है कि जैन साधु बिना नवधाभक्ति के आहार नहीं ग्रहण करते।

सभी लोग अपने घरों से बाहर निकल-निकलकर भगवान को तरह-तरह से वस्त्राभूषण आदि भेंट करना चाहते हैं—

एक व्यक्ति—**आओ प्रभु! आज हमारे यहाँ बहुत अच्छा भोजन बना है।**

महिला—**प्रभु! आपको सर्दी लगती होगी, ये अच्छे-अच्छे कपड़े हैं, ले लो।**

दूसरा व्यक्ति—भगवन्! आप हमारी इस कन्या के साथ विवाह कर लीजिए।

(भगवान ऋषभदेव का समय बताने के लिए यहाँ पर कुछ श्रावकों को भगवान के आवाहन आदि के लिए अपने-अपने घरों के आगे खड़े रहने का निर्देश दें तथा विधिनायक दीक्षाकल्याणक वाले भगवान को मस्तक पर धारण करके प्रतिष्ठाचार्य भगवान की आहारचर्या प्रदर्शित करने के लिए कुछ देर श्रावकों की बस्ती में भ्रमण करें)

(इस प्रकार से लोग कहते रहे, पर प्रभु आगे बढ़ते गए। चलते-चलते छह माह के भ्रमण के पश्चात् भगवान ऋषभदेव हस्तिनापुर पहुँचते हैं। प्रभु के पहुँचने के एक दिन पूर्व वहाँ के राजा श्रेयांस ने रात्रि के पिछले प्रहर में सुमेरु पर्वत आदि सात स्वप्न देखे। प्रातःकाल पुरोहित से उनका फल पूछा)

राजमहल का दृश्य

(राजा श्रेयांस सुख की निद्रा से उठते हैं)

श्रेयाँस—ॐ नमः सिद्धेभ्यः। आ हा! आज रात्रि में मैंने कितने सुन्दर-सुन्दर स्वप्न देखे, एक नहीं, दो नहीं, पूरे सात, सात स्वप्न देखे हैं मैंने! मुझे तुरंत ज्योतिषी से इसका फल पूछना चाहिए।

(आज्ञा देते हैं) द्वारपाल!

द्वारपाल—महाराज की जय हो! आज्ञा करें।

श्रेयाँस—जाओ और इसी समय राजज्योतिषी को बुलाकर लाओ।

द्वारपाल—जो आज्ञा महाराज (चला जाता है)

(ज्योतिषी का प्रवेश) (पन्ना वगैरह लिए हुए)

ज्योतिषी—प्रणाम महाराज! आज सुबह-सुबह मुझे कैसे याद किया।

श्रेयाँस—ज्योतिषी जी, आज रात्रि के पिछले प्रहर में मैंने सात स्वप्न देखे हैं, मैं आपसे उन प्रश्नों का फल जानना चाहता हूँ।

ज्योतिषी—वे स्वप्न क्या हैं, महाराज! मुझे बताइये।

श्रेयाँस—हे विप्रवर! आज स्वप्न में मैंने सर्वप्रथम सुदर्शन मेरु का दर्शन किया है उसके पश्चात् क्रमशः कल्पवृक्ष, सिंह, बैल, सूर्य, चन्द्र, रत्नों से भरा समुद्र और व्यंतर देवों की मूर्तियाँ देखी हैं।

ज्योतिषी—हे राजन्! सुदर्शन मेरु के दर्शन से आज आपको किसी ऐसे महापुरुष के दर्शन होंगे, जिनका कि सुमेरु पर्वत पर अभिषेक हुआ हो और अन्य शेष स्वप्न भी शुभ फल को ही कहने वाले हैं।

(तभी द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—महाराज की जय हो! महाराज! हमारे नगर में महामुनि आदिनाथ पधारे हैं, सम्पूर्ण प्रजा उनकी जयजयकार कर रही है।

(राजा श्रेयांस परोक्ष में भगवान ऋषभदेव को नमस्कार करते हैं)

(राजा श्रेयांस तुरंत महल से बाहर आते हैं और भगवान ऋषभदेव के दर्शनमात्र से उन्हें दशभव पूर्व का जातिस्मरण हो जाता है कि किस प्रकार से उन्होंने वज्रजंघ और रानी श्रीमती के रूप में जंगल में एक मुनिराज को आहार दिया था। ये वज्रजंघ का जीव ही तो हैं जो महामुनि ऋषभदेव बन गये हैं और मैं ही वह रानी श्रीमती का जीव हूँ। अहो! कितने महान पुण्य का उदय आया है! अब मैं महामुनि ऋषभदेव को उसी प्रकर नवधाभक्तिपूर्वक आहार दूँगा। अपने बड़े भाई राजा सोमप्रभ और भाभी लक्ष्मी को आवाज देते हैं।)

श्रेयाँस—अरे भैय्या, भाभी! जल्दी आओ। हम महामुनि ऋषभदेव को आहार देंगे। अरे! जल्दी से पड़गाहन करो। हे स्वामी! नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु, अत्र तिष्ठ तिष्ठ, आहार जल शुद्ध है।

अरे यह क्या! मुनिराज तो खड़े हो गये, आज पूरे १ वर्ष और ३९ दिनों के पश्चात् आहार ग्रहण करेंगे।

राजा श्रेयांस अपने भैय्या-भाभी सहित तीन बार मुनिराज की परिक्रमा करते हैं। नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु।

श्रेयाँस—मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, आहार जल शुद्ध है, स्वामी! भोजनशाला में प्रवेश कीजिए।

(भगवान ऋषभदेव का राजा श्रेयांस ने पड़गाहन कर लिया है, भगवान का आहार होता है, पंचाश्चर्य की वृष्टि होती है, जब अयोध्या के राजा चक्रवर्ती सम्राट् भरत को यह शुभ समाचार प्राप्त होता है तो वह स्वयं हस्तिनापुर आते हैं और राजा श्रेयांस को दानतीर्थप्रवर्तक की उपाधि प्रदान कर सम्मानित करते हैं। जिस दिन महामुनि ऋषभदेव ने आहार ग्रहण किया, वह दिन आज भी अक्षय तृतीया के नाम से प्रसिद्ध है, इस दिन को देशभर में श्रद्धा और भक्ति के साथ उत्सव के रूप में मनाया जाता है।)

आहार-संबंधी भजन (आहार के बीच में ही पृष्ठ ८७ से पढ़ें)

(अयोध्या नरेश भरत ने जब यह समाचार सुना तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा। वे तुरंत ही वहाँ से चलकर हस्तिनापुर आ गये। महामुनिराज के दर्शन किए और राजा श्रेयांस का बहुत ही सम्मान करके उन्हें "दान तीर्थ प्रवर्तक" की उपाधि से अलंकृत किया, तभी से धरती पर सम्मान की परम्परा का शुभारंभ हुआ)

४. केवलज्ञान एवं मोक्षकल्याणक

(सातवाँ दृश्य)

(पुनः भगवान ऋषभदेव चलते-चलते पुरिमतालपुर के प्रयाग नाम के उद्यान में पहुँचे और तपस्या करते-करते जब एक हजार वर्ष बीत गए, तब भगवान को दिव्य केवलज्ञान प्रगट हो गया, उस समय सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने अर्द्धनिमिष मात्र में आकाश में अधर समवसरण की रचना कर दी। उसमें बारह कोठों में देव, मनुष्य, विद्याधर, पशु-पक्षी आदि सभी उपस्थित हुए, भगवान की दिव्यध्वनि सुनने के लिए भारी जनसमूह उमड़ पड़ा, सभी ने प्रभु की दिव्यवाणी को अपनी-अपनी भाषा में समझ लिया।) (यहाँ समवसरण की रचना दिखावें तथा उपस्थित आचार्य या मुनि गणधर के रूप में जनता को दिव्यध्वनि के प्रतीक में सम्बोधित करें।)

(जब भगवान श्रीविहार करते हैं, तब समवसरण तो विघटित हो जाता है और प्रभु आकाश में अधर गमन करते हैं। इन्द्र प्रभु के चरणकमल के नीचे सुगंधित स्वर्णकमलों की रचना करता है, चारों ओर सुभिक्ष हो जाता है।) (यहाँ चांदी के कमलों को बनवाकर भगवान के समीप रखकर अनन्तर लोगों को वितरित किया जा सकता है।)

इस प्रकार प्रभु ने एक दिन जान लिया कि मेरी आयु मात्र चौदह दिन शेष है, वे विहार करके कैलाशगिरि पहुँच गए। एकाग्र ध्यान में लीन प्रभु को चौदह दिन बाद शिवलक्ष्मी ने वरण कर लिया।

तब इन्द्रों ने खूब दीपावली मनाई। भगवान के निर्वाणकल्याणक की खूब धूमधाम से पूजा की। उस समय भरत को बहुत दुखी देखकर श्री वृषभसेन गणधर सम्बोधित करते हैं।

वृषभसेन—हे भव्य प्राणी! तुम अफसोस मत करो। तुमने तो प्रभु से बहुत कुछ सीखा है। अतः अब उनके उपदेशों को धारण करके सभी को सिखाना है। (इस प्रकार के वचन सुनकर भरत को संतुष्टि हुई। प्रभु ऋषभदेव के मोक्षगमन के पश्चात् क्रम-क्रम से चौदह लाख राजाओं ने दीक्षा लेकर इस परम्परा का निर्वाह किया।) (पृष्ठ ६३ से निर्वाणकल्याणक का भजन प्रस्तुत करें)

अंत में सूत्रधार—हे भगवान्! अब मुझे भी परम्परा से मुक्ति धाम प्राप्त हो, यही प्रार्थना है। भगवान ऋषभदेव की जय! आदिब्रह्मा भगवान ऋषभदेव की जय!

सोलह स्वप्न दर्शन

गर्भकल्याणक के बाह्य दृश्य में माता के सोलह स्वप्न देखने के समय प्रतिष्ठाचार्य इन पद्यों को पढ़ें—

(शेर छंद)

पहले स्वपन में माता गज देख रही हैं।
सुन्दर सफेद हाथी गर्जन से युक्त है।।
त्रैलोक्य पूज्य पुत्र को वह प्राप्त करेगी।
जननी जगत जननी का लाभ प्राप्त करेगी।।१।।

उत्तुंग वृषभ देखतीं द्वितीय स्वप्न में।
अति रून्द्रतर ध्वनी से युक्त शुभ गजेन्द्र है।।
त्रयज्ञानधारि श्रेष्ठ श्रुत को प्राप्त करेगी।
जननी जगत जननी का लाभ प्राप्त करेगी।।२।।

माँ देख रहीं सिंह को तृतीय स्वप्न में।
पर्वत समान गज का भी मद नाश करे है।।
आनंत शक्ति युक्त पुत्र प्राप्त करेगी।
जननी जगत जननी का लाभ प्राप्त करेगी।।३।।

चौथे स्वप्न में देखतीं कमलासनी लक्ष्मी।
जो स्वर्णकुंभ से स्नान प्राप्त कर रहीं।।
जन्माभिषेक युक्त सुत को प्राप्त करेगी।
जननी जगत जननी का लाभ प्राप्त करेगी।।४।।

मंदार की माला युगल ये देख रही हैं।
सुन्दर खिलीं पंचम स्वपन में देख रही हैं।।
सद्धर्म प्रचारक सुपुत्र प्राप्त करेगी।
जननी जगत जननी का लाभ प्राप्त करेगी।।५।।

छट्ठे स्वपन में श्वेत दुग्ध सम है चन्द्रमा।
माता को मानो दे रहा अमृत सुखोपमा।।
त्रैलोक्य आल्हादक सुपुत्र प्राप्त करेंगी।
जननी जगत जननी का लाभ प्राप्त करेगी।।६।।

सप्तम स्वपन में सूर्य बिम्ब देख रही माँ।
जग का तिमिर विनाश वह प्रकाश भर रहा।।

इस फल में माँ तेजस्वी पुत्र प्राप्त करेंगी।
जननी जगत जननी का लाभ प्राप्त करेगी।।७।।

मछली युगल को देख रहीं मात नींद में।
अष्टम स्वपन में क्रीड़ा करती हुई मीन है।।
अतिशय प्रसन्न पुत्र को वे प्राप्त करेंगी।
जननी जगत जननी का लाभ प्राप्त करेगी।।८।।

दो स्वर्ण कुंभ देखती माँ नवम स्वप्न में।
सुन्दर सजे अमृत से वे आकण्ठ भरे हैं।।
निधियों की प्राप्ति वाले सुत को मात लहेंगी।
जननी जगत जननी का लाभ प्राप्त करेगी।।९।।

दसवें में प्रफुल्लित कमल से युक्त सरोवर।
माँ देख रहीं स्वप्न में सुन्दर सा सरोवर।
वे पुत्र सहस लक्षणों युत प्राप्त करेंगी।
जननी जगत जननी का लाभ प्राप्त करेगी।।१०।।

रत्नों से युक्त सागर लहराता हुआ है।
माता को ग्यारहवें स्वपन में दीख रहा है।।
कैवल्यज्ञानी पुत्र को ये प्राप्त करेंगी।
जननी जगत जननी का लाभ प्राप्त करेगी।।११।।

रत्नों की कांति युक्त सिंहपीठ देखतीं।
माँ बारहवें स्वपन में सिंहासन को देखतीं।।
त्रैलोक्यपती पुत्र को वह प्राप्त करेगी।
जननी जगत जननी का लाभ प्राप्त करेगी।।१२।।

मणियों से बना देव का विमान दिख रहा।
अब तेरवें स्वपन में माँ को पूर्ण सुख कहा।।
स्वर्गावतीर्ण पुत्र को वह प्राप्त करेगी।
जननी जगत जननी का लाभ प्राप्त करेगी।।१३।।

देखा स्वपन में चौदवें शुभ नाग विमाना।
माता को वह विमान मानो सूर्य समाना।।
वह अवधिज्ञान युक्त पुत्र प्राप्त करेगी।
जननी जगत जननी का लाभ प्राप्त करेगी।।१४।।

पन्द्रहवें स्वपन में रतन की राशि देखतीं।
जो अपनी चमक से दिशाओं को प्रकाशतीं।।
माता अनन्तगुणी पुत्र प्राप्त करेगी।
जननी जगत जननी का लाभ प्राप्त करेगी।।१५।।

निर्धूम अग्नि देखतीं सोलहवें स्वपन में।
सर्दी व अंधेरे को दूर जो करे क्षण में।।
पापों से रहित पुत्र को वे प्राप्त करेंगी।
जननी जगत जननी का लाभ प्राप्त करेगी।।१६।।

शंभु छंद— ये स्वप्न देखकर माता प्रातः सुखद नींद से जगती है।
बाजों व प्रभाती के मंगल स्वर सुनकर निद्रा तजती है।।
उन स्वप्नों का फल पति से फिर सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुईं।
मानों मैंने तीर्थंकर सुत को पा ही लिया वे तृप्त हुईं।।१७।।

देवियों और माता मरुदेवी के गूढ़ प्रश्न एवं उत्तर

१. 'श्रीदेवी' का प्रश्न—

तर्ज—एक परदेशी.....।

तेरे दर पे आके माता पूछूँ प्रश्न मैं, तेरे ज्ञान से भी बनूँ ज्ञानवान मैं।
हे माता तेरे, गर्भ बसे प्रभु हैं, तीन ज्ञानधारी तीर्थंकर प्रभु हैं।।
कौन सा प्राणी पिंजड़े में रहता, कौन कठोर शब्द करता है-शब्द करता है?
जीवों का आधार कौन है, अक्षर च्युत क्या पढ़ना भला है-पढ़ना भला है?
बता दे तू उत्तर माता मेरे प्रश्न के, तेरे ज्ञान से भी बनूँ ज्ञानवान मैं।।१।।

१. 'श्रीदेवी' के प्रश्न का उत्तर—

तर्ज—एक परदेशी.....।

देवी तेरे प्रश्नों का मैं उत्तर दूँ भला, तीर्थंकर के ज्ञान की जो मुझमें है कला।
तू भी अपने ज्ञान की ज्योति को जला, ज्ञान की जला सम्यग्ज्ञान की जला।।
तोता पिंजड़े में रहता है, कौआ कठोर शब्द करता है-शब्द करता है।
जीवों का आधार लोक है, अक्षर च्युत श्लोक भला है-श्लोक भला है।।
देवी मैंने उत्तर जो भी दिया है भला, तीर्थंकर के ज्ञान की जो मुझमें है कला।।१।।

२. 'ह्री देवी' का प्रश्न—

तर्ज—झुमका गिरा रे.....।

उत्तर दे दे रे,
हे माता मेरे प्रश्नों का तू उत्तर दे दे रे।
माता तव शरीर में क्या, गंभीर चीज है बतलाओ।
आपके पति की भुजा कहाँ तक, लम्बी है माँ समझाओ।।
कैसी और किस वस्तु में अवगाहन करना श्रेयस्कर।
हे अम्बे! तुम अधिक प्रशंसापात्र बनीं क्यों पृथ्वी पर।।...पात्र बनीं
क्यों पृथ्वी पर।।
उत्तर दे दे रे,
हे माता मेरे प्रश्नों का तू उत्तर दे दे रे।।१।।

२. 'ह्रीदेवी' के प्रश्न का उत्तर—

तर्ज—झुमका गिरा रे.....।

उत्तर ले ले रे,
हे देवी अपने प्रश्नों का तू उत्तर ले ले रे।।
मम शरीर में नाभिमात्र गंभीर वस्तु कहलाती है।
आजानू घुटनों तक लम्बी पति की भुजाएं आती हैं।।
कुछ गहरे जल में अवगाहन करना ही है श्रेयस्कर।
तीर्थंकर माता होने से पूज्य हुई मैं पृथ्वी पर।।...
पूज्य हुई मैं पृथ्वी पर।
उत्तर ले ले रे,
हे देवी अपने प्रश्नों का तू उत्तर ले ले रे।।१।।

३. 'धृति देवी' का प्रश्न—

तर्ज—साजन मेरा उस.....।

हे माता तुझ को नमस्कार है, प्रभु जी की महिमा अपरम्पार है।
प्रश्न पूछूँ माँ तेरे द्वार है, तेरे उत्तर का इंतजार है।
इस जग में है उपादेय क्या? किसको छोड़ूँ मैं माता हेय क्या?
कौन गुरु हैं मोक्षमार्ग क्या? समझा दे माता इसका सार क्या?
नगरी में छाई क्या बहार है? तेरे उत्तर का इंतजार है।।१।।

३. 'धृतिदेवी' के प्रश्न का उत्तर—

तर्ज—साजन मेरा उस.....।

देवी तू कितनी समझदार है, मुझको तेरा ही इंतजार है।
प्रभु जी का कैसा चमत्कार है, प्रश्नों का उत्तर भी तैयार है।।
गुरुओं के वचन उपादेय हैं, पापादि निंद्यकार्य हेय हैं।
तत्त्वों के ज्ञाता जग में पूज्य हैं, संसार से जो हुए दूर हैं।।
बतलाते जो मुक्ती का द्वार हैं, मेरे उत्तर का यही सार है।।१।।

४. 'कीर्तिदेवी' का प्रश्न—

तर्ज—मिलो न तुम तो.....।

प्रश्न करूँ तो मन घबराए, उत्तर मगर न आए,
मुझे क्या हो गया है-२।।
पथ के लिए पथ्य क्या है? संसार में शुद्ध कौन है? हो ओ.....।

संसार में विष क्या है? और माता बोलो पंडित कौन है? हो ओ.....।
तू ही माता उत्तर बता दे, शंका मेरी मिटा दे,
मुझे क्या हो गया है-२।।१।।

४. 'कीर्तिदेवी' के प्रश्न का उत्तर—

तर्ज—मिलो न तुम तो.....।

उत्तर सुन लो मन हर्षाए, देवी क्यों घबराए,
तुझे क्या हो गया है-२।।
पथ के लिए पथ्य धरम है, मन पवित्र वाला मानव शुद्ध है।। हो ओ.....
गुरु तिरस्कार विष है, हिताहित विवेकी पंडित बुद्ध है।। हो ओ.....
सार यहाँ सुन मन हरषाए, देवी क्यों घबराए,
तुझे क्या हो गया है-२।।१।।

५. 'बुद्धिदेवी' का प्रश्न—

तर्ज—इक प्यार का नगमा है.....।

हे तीर्थंकर माता, तू कैसी सुहानी है,
प्रश्नों की उत्तरदाता, तेरी अमर कहानी है।।
हे मात-दान क्या है, है मित्र कौन जग में,
वाणी का भूषण क्या, क्या अलंकार मुझमें?
कर समाधान माता, यही तेरी निशानी है।
प्रश्नों की उत्तरदाता, तेरी अमर कहानी है।।१।।

५. 'बुद्धिदेवी' के प्रश्न का उत्तर—

तर्ज—इक प्यार का नगमा है.....।

देवी तेरे प्रश्नों में, कुछ ऐसी निशानी है।
हर मानव के मन की, और जग की कहानी है।।
है दान वही जग में, जिसके बदले में चाह नहीं।
है मित्र वही सच में, पापों से हटावे सही।।
सत्य वाणी का भूषण है, शील तेरी निशानी है।
हर मानव के मन की, और जग की कहानी है।।१।।

६. 'लक्ष्मी देवी' का प्रश्न—

तर्ज—भगवान तेरी नैया.....।

माता मेरे प्रश्नों का, उत्तर तो बता देना।
मेरे मन की शंका का, समाधान करा देना।।

माँ जग में कौन अंधा, है बहरा कौन प्राणी?
मैं नहिं जानूं गूंगा, किसे कहते हैं ज्ञानी।।
उत्तर देकर माता, संदेह मिटा देना।
मेरे मन की शंका का, समाधान करा देना।।१।।

६. 'लक्ष्मी देवी' के प्रश्न का उत्तर—

तर्ज—भगवान मेरी नैया.....।

देवी इन उत्तर में, तुम ध्यान लगा लेना।
बड़ा सार भरा इनमें, इसे दिल में बसा लेना।।
पाप कार्यों में रत अंधा, हित वच न सुने वो बहरा।
नहिं मधुर वचन बोले, वह गूंगा ही ठहरा।।
प्रभु की इस वाणी में, विश्वास जमा लेना।
बड़ा सार भरा इनमें, इसे दिल में बसा लेना।।१।।

७. 'शान्ति देवी' का प्रश्न—

तर्ज—तन डोले.....।

हे जगमाता, जिनवर माता, तेरे द्वार खड़ी हूँ आज मैं,
कुछ प्रश्न संजो कर लायी हूँ।।
कौन पूज्य है इस पृथ्वी पर, निर्धन किसको कहते।
जग को किसने जीत लिया है, बोलो उसे क्या कहते? माता बोलो.....
हे जग माता, जग बतलाता, तेरी महिमा अपरम्पार है।
मैं उत्तर पाने आई हूँ।।१।।

७. 'शान्ति देवी' के प्रश्न का उत्तर—

तर्ज—तन डोले.....।

प्रभु नाम भज ले, जिनधाम भज ले, जिसे पाकर हुई निहाल मैं,
तेरा उत्तर देने आई हूँ।।
चरितवान नर पूज्य धरा पर, चरित पतित निर्धन है।
जग को जीता सत्पुरुषों ने, सहनशील उन्हें कहते।। देवी सहनशील....।।
यह ज्ञान कर ले, बात ध्यान कर ले, तेरे प्रश्नों का यही सार है,
मैं उत्तर देने आई हूँ।।१।।

८. 'पुष्टि देवी' का प्रश्न—

तर्ज—झिलमिल सितारों का.....।

खुशियों से भरा तेरा आंगन होगा, जिनवर शिशु का आवन होगा।
प्रश्नों का उत्तर पाकर, मन पावन होगा। खुशियों से भरा.....
चिन्तन किसका करें रात-दिन, माता जरा बता देना?
और प्रेमिका किसे बनायें? यह जग को समझा देना।।
तभी दूर मिथ्यातम होगा, जिनवर शिशु का आवन होगा।।
खुशियों से भरा.....।।१।।

८. 'पुष्टि देवी' के प्रश्न का उत्तर—

तर्ज—झिलमिल सितारों का.....।

खुशियों से भरा मेरा आंगन होगा, जिनवर शिशु का आवन होगा।
प्रश्नों का उत्तर देकर, मन पावन होगा।। खुशियों से भरा....।।
जग की नश्वरता का चिंतन सब प्राणी को हितकर है।
करुणा मैत्रीभाव चतुरता, यही प्रेमिका सुखकर है।।
इनसे दूर मिथ्यातम होगा, जिनवर शिशु का आवन होगा।।
खुशियों से भरा.....।।१।।

महावीर की बाल सभा एवं सर्प क्रीड़ा

(जन्मकल्याणक के दिन रात्रि में पालना एवं बालक्रीड़ा के पश्चात् मंच पर भगवान महावीर की यह बाल सभा बच्चों से प्रस्तुत कराएँ)

राजमहल का दृश्य है, बीचों बीच में लगभग ८ वर्ष के बालक को महावीर के रूप में सुसज्जित करके सिंहासन पर बिठावें और बगल की कुर्सी पर महावीर के प्रियसखा के रूप में ८ वर्ष के एक बालक को उनके प्रिय देवसखा के प्रतीक में दिखावें। आजू-बाजू में ७-७ बालक और भी (लगभग ५ से ७ वर्ष की उम्र वाले) सुन्दर वेशभूषा में बिठाकर बालसभा का कार्यक्रम आारंभ करें-(एक देव का कत्थक नृत्य दिखावें) पुनः-

देवसखा—हे तीर्थंकर सखा वर्धमान! इस धरती पर सबसे बहुमूल्य पर्याय कौन सी होती है?

बालक वर्धमान—मित्रवर! धरती पर मनुष्य पर्याय सबसे अधिक बहुमूल्य मानी जाती है।

देवसखा—ऐसा क्यों? मेरे वीर मित्र!

वर्धमान—इसलिए कि मनुष्य पर्याय से ही सबसे ऊँचा पद मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। इसके अलावा किसी भी पर्याय से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

देवबालक नं. १—हे वीर! देव लोग मनुष्य पर्याय कैसे पा सकते हैं? यह तो बताइये।

वर्धमान—मित्रों! देवता भी भगवान की भक्ति और सम्यग्दर्शन की दृढ़ता से अगले जन्म में उस बहुमूल्य मनुष्य शरीर को धारण कर सकते हैं।

देवबालक नं. २—हे सन्मति! कुछ लोग मनुष्य पर्याय पाकर भी लूले-लंगड़े हो जाते हैं, वह किस कारण से?

वर्धमान—सुनो भाइयों! इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जो लोग पूर्व जन्म में दूसरों को दुःख देते हैं अथवा दूसरे अंगहीन लोगों को देखकर उनकी हंसी उड़ाते हैं वे लोग मनुष्य जन्म पाकर भी लूले-लंगड़े हो जाते हैं।

देवबालक नं. ३—हे महावीर! कुछ मनुष्य बेचारे गूंगे और बहरे देखे जाते हैं, सो उसका क्या कारण है?

वर्धमान—मेरे सखा! इसका भी उत्तर सुनो, जो लोग दूसरों की बुराई करते हैं या झूठ बोलते हैं वे तो गूंगे हो जाते हैं और जो बुराई सुनते हैं वे बहरे हो जाते हैं।

देवबालक नं. ४—(राजस्थानी भाषा में) अरे ओ सिद्धारथ पुत्र! म्हारे भी एक प्रश्न का उत्तर दे दीजो। मैं पूछवा चाहूँ के थांके बाबा को कांई नाव है, मने तो मालुम कोनी?

वर्धमान—सुण सुण म्हारो सखो। म्हारे बाबा को नाव है राजा सर्वार्थ। समझा या कोनी समझा। म्हारा बाप जी तो राजा सिद्धार्थ है और वाका बापजी राजा सर्वारथ है।

देवबालक नं. ५—(गुजराती भाषा में) अरे वाह! त्रिशलानन्दन तो आजे सबने बतावा मा लागा छे तो मू पण एक प्रश्न जरूर पूछवा माटे व्याकुल छूं। हे महावीर! तीर्थंकर भगवन्त ऋषभदेव ने दीक्षा क्यां लीधी थी?

वर्धमान—आ आ देवसखा! आ प्रश्न न उत्तर जानवा माटे थारी इच्छा छे तो सुण, प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान ज्यां दीक्षा लीधी त्याना नाम छे-प्रयाग। वर्तमान मा त्यां "तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली" नाम तीरथ बणी गया छे, त्यां अक्षयवटवृक्ष तले भगवान ऋषभदेव नी प्रतिमा ध्यानस्थ मुद्रा मा विराजमान छे।

देवबालक नं. ६—(अंग्रेजी में) ओ माई डियर फ्रैन्ड महावीर! आई वान्ट टू आस्क यू वन क्वेश्चन दैट हू आर काल्ड रीयल गॉड?

वर्धमान—दिस इस वेरी गुड क्वेश्चन मिस्टर देव! हू हैव डेस्ट्रायड एट कर्माज एण्ड अटेन्ड निर्वान पदवी दे आर काल्ड रीयल गॉड।

देवबालक नं. ७—(अवधी भाषा में) अरे ओ महावीर! जरा हमहू का एक बात बताय देव कि हमरे सौधर्मइन्द्र महाराज कौन अइसा पूरब जनम मा पुन्य किहिन हैं कि आप जइसे कितनेव तीर्थंकर भगवन्तन के इ जन्माभिषेक करे का सौभाग्य पावत हैं?

वर्धमान—हाँ हाँ देव महाराज! तुम तो अब अवधी भाषा मा पूछे लागेव, हमका यहू बोली बोलेक आवत है। तुम सौधर्म इन्द्र के पुन्य की बात जाना चाहत हौ ना, तौ सुनौ! ई हमरे इन्द्र राजा अपने पूरब जनम मा खूब भगवान की भक्ति करिन और फिर निर्दोष चारित्र का पालन करिन, तपस्या करिन, वही पुन्य के परताप से ई मनुष्य का चोला छोड़ के सौधर्म इन्द्र भये हैं।

देवबालक नं. ८—(बुंदेलखंडी भाषा में) अरे ओ लल्ला महावीर! ई इन्द्र महाराज कबै मोक्ष जैहें?

वर्धमान—बस, हिंया से जब इनकी उमर पूरी हुई जई है तो एक मनुष्य का जनम लइकै, तपस्या करिकै सीधे इनका मोक्ष होय जई है।

देवबालक नं. ९—(नीमाड़ी भाषा में) महावीर! तुम जवान हुइन ब्याह करोगा

कि नइ?

वर्धमान—हउं तो बड़ो हुइन दीक्षा लेऊँगा, ब्याव नि करुँगा।

देवबालकों का सामूहिक स्वर—जय हो महावीर! तुम्हारी जय हो। तुम्हारी जय हो। त्रिशला माता की जय हो, कुण्डलपुर नगरी की जय हो।

(इसी बीच माता त्रिशला उस बालसभा में आकर पुत्र महावीर का चुम्बन लेकर उनसे कहती हैं)-

त्रिशला—बेटा, चलो उद्यान में तुम्हें झूला झुलाऊँगी।

वर्धमान—चलो माँ, आपके साथ झूलने में तो कुछ और ही आनन्द आएगा।

(माता-पुत्र झूले पर बैठ जाते हैं और देव-देवियाँ उन्हें झुला रहे हैं। सामूहिक गीत गा-गाकर खूब मनोरंजन करते हैं।)

छंद—(सावनी गीत-अरे रामा.....)

अरे माता, तेरे गुणों की महिमा, जगत में छाई है भारी।
महावीर से तीर्थंकर की जननी।
महाराज सिद्धार्थ की धर्मपत्नी।।
अरे माता, कुण्डलपुर नगरी में, खुशियाँ छाई हैं भारी।।१।।

देवबालक नं. १—माता! मैं भी आपकी गोदी में बैठकर झूला झूलूँगा।

त्रिशला—हाँ, हाँ, आओ पुत्र! तुम भी मेरे साथ झूला झूलो। (झूलने लगते हैं)

देवबालक नं. २—माँ! मुझे भी दुलार करो ना!

त्रिशला—(पुचकारते हुए) आओ मेरे प्यारे बच्चों! तुम सभी के साथ तो आज मुझे बड़ा ही आनन्द आ रहा है।

(सभी देवबालक वहीं पास में आकर माता को घेरकर गाना गाने लगते हैं।)—

तर्ज—छोटे-छोटे ग्वाल.....

छोटे छोटे बालकों की प्यारी मइया।
छूने को चाहें हम तेरी पइयां।।
खेलें आज वीर संग हम छइयां।
नगरी में बज रहीं शहनाइयां।।
आँख मिचौली खेलेंगे, वीर की लीला देखेंगे।
फिर माँ के आँचल में आकर, साथ में झूला झूलेंगे।।
देख देख खुश होगी मइया।
छूने को चाहें हम तेरी पइयां।।१।।

त्रिशला—सुनो बच्चों! अब मैं जा रही हूँ, तुम लोग खेलकर थोड़ी देर में घर आ जाना।

सभी बालक—ठीक है माँ, ठीक है। हम सन्मति वीर को लेकर जल्दी ही आपके पास आ जाएंगे।

(माता चली जाती है, पुनः सभी बालक महावीर के साथ कबड्डी, खो-खो, गेंद-फुटबाल आदि खेल खेलते हैं। तभी एक देव भयंकर नाग का रूप धारणकर महावीर की परीक्षा लेने आता है। सभी बालक उसे देखकर डर के मारे पेड़ पर चढ़ जाते हैं और कुछ पेड़ से गिर-गिरकर इधर-उधर भागने लगते हैं।

(पेड़ पर चढ़े बालकों का दृश्य एवं इधर-उधर भागते बालक)

वर्धमान—(बालकों से) अरे! तुम सब लोग पेड़ पर क्यों चढ़ गये?

देवबालक नं. १—जल्दी से तुम भी ऊपर आ जाओ, वर्धमान! नहीं तो सांप काट लेगा।

देवबालक नं. २—अरे अरे, देखो! सांप उधर वर्धमान की ओर ही भाग रहा है, कहीं काट न ले।

देवबालक नं. ३—इन्हें कुछ हो गया तो हम माता के सामने क्या मुँह दिखाएंगे?

देवबालक नं. ४—(महावीर को जबर्दस्ती पेड़ पर चढ़ाते हुए) चलो चलो, ऊपर पेड़ पर बैठकर देखते हैं कि यह साँप कहाँ जाता है।

वर्धमान—क्या तुम्हें भी डर लग रहा है मित्रों! मैं तो इसे पछाड़ सकता हूँ।

देव बालक—नहीं मित्र! ऐसा साहस मत करना, यह सांप साधारण नहीं, भयंकर नाग है। इसके अंदर इतना जहर होता है कि एक फुंकार से ही मनुष्य के प्राण निकल जाते हैं।

एक बालक—यह क्या? यह सांप तो इसी पेड़ के ऊपर चढ़ा आ रहा है, क्या हम सभी की जान लेना चाहता है?

सभी बालक—अरे बचाओ, बचाओ! कुण्डलपुर के वनमाली! जल्दी आओ, नहीं तो यह नाग आज हम सबको खा जाएगा।

वर्धमान—(पेड़ की एक डाल पर खड़े होकर बीन बजाने लगते हैं) ऐ मेरे मित्र! सुनो, तुम किसी को काटना मत। अपनी शक्ति ही तुम दिखाना चाहते हो, तो मैं आता हूँ तुम्हारे पास। लेकिन मेरे मित्रों को तुम बिल्कुल मत सताना। (तुरंत पेड़ से लिपटे हुए नाग के फण पर पैर रखकर बालक वर्धमान नीचे उतर आए और सर्प को अपने हाथों में लेकर उसके साथ क्रीड़ा करने लगे।

देवबालक—अरे मित्र! छोड़ दो, छोड़ दो, इस सर्प को छोड़ दो। अन्यथा मौका पाते ही तुम्हारे ऊपर हमला कर देगा।

बालक नं. २—हे प्रभो! कितना धैर्य और बल है इस बालक में। मेरी तो डर के माने जान ही सूखी जा रही है।

बालक नं. ३—बस, यही मनाओ कि वर्धमान की रक्षा हो और माता त्रिशला तक हम इन्हें सुरक्षित पहुँचा सकें।

वर्धमान—मित्रों! तुम सभी निर्भय होकर नीचे उतर आओ, यह सर्प तुम लोगों का कुछ भी नहीं बिगाड़ेगा।

(अकस्मात् वहाँ संगम नामक देव प्रगट होकर कहने लगता है)-

संगमदेव—(नमस्कार मुद्रा में) जय हो जय हो, वर्धमान महावीर की जय हो।

वर्धमान—आप कौन हैं?

संगमदेव—मैं एक देव हूँ और मैं ही सांप का रूप धारण कर आपके पराक्रम की परीक्षा लेने आया था। हे वर्धमान! आज मैं आपको "महावीर" के नाम से अलंकृत कर आपको बारम्बार नमन करता हूँ। धन्य हैं आप। बोलो महावीर तीर्थंकर भगवान की जय।

सभी बालक—(नीचे उतरकर) हे महावीर! सचमुच में आपका बल-पौरुष सराहनीय है।

सामूहिक गीत—

सब मिलकर आज जय कहो, महावीर प्रभू की।
मस्तक झुकाकर जय कहो, श्री वीर प्रभू की।।
ज्ञानी बनो दानी बनो, बलवान भी बनो।
महावीर सम बन जय कहो, महावीर प्रभू की।।१।।
देकर परीक्षा नाग को, परास्त कर दिया।
हम सब भी मिल वन्दन करें, महावीर प्रभू की।।२।।

सामूहिक स्वर—जय बोलो, महावीर भगवान की जय।

झण्डारोहण गीत

तर्ज —फूलों सा.....

केशरिया झण्डा मेरा, जिनमत की पहचान है।
साथिया निशान है, जैनियों की शान है, उत्सव का सम्मान है।। टेक.।।
जिनवर के मंदिर शाश्वत बने जो,
उन सब पे भी ध्वज लहराते हैं।
रत्नों से निर्मित फिर भी हवा के,
चलने से वे ध्वज लहराते हैं।
देव वहाँ जाते, कीर्ति प्रभु की गाते, जिनचैत्य की वंदना कर रहे।
जय जय हो, जय जय प्रभो, केशरिया ध्वज धाम है।। साथिया।।१।।
आकाश की ऊँचाई को कहता,
झण्डा यह देखो फहराया है।
फूलों से गूंथा घंटी से गूंजा,
जिनवाणी का स्वर लहराया है।
महामहोत्सव में, आज के उत्सव में, ''चन्दनामती'' ध्वज वंदन करो।
जय जय हो, जय जय प्रभो, केशरिया ध्वज धाम है।। साथिया।।२।।

झण्डारोहण गीत

तर्ज —जनगणमन.....

जन-जन के हितकारी हो प्रभु, युग के आदि विधाता।
ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तुम ही, वृषभेश्वर जग त्राता।।
तुमने जन्म लिया जब,
कण-कण धन्य हुआ तब।
इन्द्र सिंहासन डोला,
मेरु सुदर्शन पांडु शिला पर, सबने जय जय बोला।
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय हे।।१।।

नाभिराय मरुदेवी के नन्दन, हुए प्रथम अवतारी।
पंचकल्याणक के हो स्वामी, सब जन मंगलकारी।।
सब मिल जय प्रभु बोलो,
जग के बंधन खोलो।
गूंज उठे जग सारा,
मुक्तिमार्ग बतलाते तुमको, नमन ''चन्दनामति'' का।
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय हे।।२।।

गर्भकल्याणक गीत

धरती का तुम्हें नमन है, आकाश का तुम्हें नमन है।
चन्दा सूरज करें आरती, छुटते जनम मरण हैं।।
सौ सौ बार नमन है।।
ऋषभदेव जिनवर को युग का, सौ-सौ बार नमन है।। टेक.।।
प्रभु का गर्भकल्याणक उत्सव, इन्द्र मनाया करते।
छः महिने पहले कुबेर, रत्नों की वर्षा करते।।
तीर्थंकर माँ के आँगन में, बरसें खूब रतन हैं,
सौ-सौ बार नमन है।। ऋषभदेव.....।।१।।
पिता उन्हीं रत्नों को जनता, में वितरित कर देते।
रत्न प्राप्त कर श्रावक जन, निज भाग्य धन्य कर लेते।।
धरती स्वर्णमयी बन जाती, पुलकित हुआ गगन है।
सौ-सौ बार नमन है।। ऋषभदेव.....।।२।।
एक रत्न उनमें से प्रभु यदि, आज मुझे मिल जावे।
तब मेरा भी भाग्य ''चन्दनामती'', स्वयं खिल जावे।।
तुम सम गर्भागम मेरा भी, होवे यही जतन है।
सौ-सौ बार नमन है।। ऋषभदेव.....।।३।।

गर्भकल्याणक गीत

तर्ज–सपने में...

प्रभु गर्भकल्याण में बरसे रतन की धारा रे।
कहे धनकुबेर भी धन्य है, भाग्य हमारा रे।।टेक.।।

इक पुण्यशालिनी माँ जब, देखे सोलह सपने तब।
तीर्थंकर सुत को पाती, निज जन्म धन्य कर पाती।।
उस समय पिता का खुल जाता भण्डारा रे।
कहे धनकुबेर भी धन्य है, भाग्य हमारा रे।। प्रभु...।।1।।

त्रय ज्ञान सहित तीर्थंकर, आते हैं माँ के गरभ जब।
माँ की महिमा बढ़ जाती, वे प्रश्न सहज सुलझातीं।।
अज्ञान तिमिर हर, देतीं ज्ञान उजारा रे।
कहे धनकुबेर भी धन्य है, भाग्य हमारा रे।। प्रभु...।।2।।

प्रभु गर्भकल्याण मनाएं, हम भी ऐसा फल पाएं।
अब ऐसी माँ से जन्में, जो देखे सोलह सपने।।
''चंदनामती'' यह उत्सव कितना प्यारा रे।
कहे धनकुबेर भी धन्य है भाग्य हमारा रे।। प्रभु...।।3।।

जन्मकल्याणक गीत

तर्ज–मंदिर में बाज रहे घंटे.....

स्वर्गों में बाज उठे बाजे, इन्द्रों ने मुकुट झुकाए हैं।
जिनवर का जनम हुआ भू पर, धनपति ने रतन लुटाए हैं।। टेक.।।

देवों का परिकर लेकर, इन्द्र-इन्द्राणी आए हैं-2 ।
देखा जो शिशु तीर्थंकर, नेत्र हजार बनाये हैं।
सुन्दरता लखकर प्रभुवर की, फिर भी तृप्ती ना पाये हैं।। जिनवर.....।।1।।

स्वर्गों के वस्त्राभूषण, इन्द्राणी ने पहनाए हैं।
रत्नों के पलने में फिर, जिनवर को सभी झुलाए हैं।।
प्रभु के संग खेलने को, सबके मन ललचाए हैं।। जिनवर.....।।2।।

माता का प्रभु दूध न पीते, फिर भी तो बलशाली हैं।
स्वर्गों से भोजन आता है, महिमा यही निराली है।।
'चंदनामती' उन प्रभुवर के, मात-पिता हर्षाये हैं।। जिनवर.....।।3।।

जन्मकल्याणक गीत

तर्ज–काली तेरी चोटी है.....

आदिनाथ स्वामी का जनमकल्याण है।
अयोध्यापुरी में देखो कैसी धूमधाम है।।
सारा जग करता जिनके चरणों में नमन,
तीर्थंकर हैं प्रथम।। टेक.।।

पिता नाभिराय मरुदेवी के महल में।
आये थे ऋषभदेव महाप्रभु बनके।।
बजी थी बधाई मरुदेवी आंगन,
तीर्थंकर हैं प्रथम।।1।।

शचि इन्द्राणी का भाग्य खिला है।
जिन्हें प्रभुजी का पहला दर्श मिला है।।
मायामई बालक को सुलाया माँ के पास में।
माताजी को निद्रामग्न कर दिया आपने।।
इन्द्र हुआ प्रभुजी को देखके मगन,
तीर्थंकर हैं प्रथम।।2।।

पांडुकशिला पे, प्रभु न्हवन करेंगे।
क्षीरसागर से प्रासुक, जल को भरेंगे।।

शचि फिर उनको, सजाएगी खुशी से।
पालने में प्रभु को, झुलाएगी खुशी से।।
इन्द्र करे ताण्डव, नृत्य यहाँ झूम के।
सारे जन ''चंदना'' भक्ती में विभोर हैं।।
नाभिराय नगरी में लुटाते हैं रतन,
तीर्थंकर हैं प्रथम।।3।।

पालना गीत

आदीश्वर झूले पलना, मरुदेवी लोरी गावें-२।
मरुदेवी लोरी गावें, सब देवी उसे सुलावें।। आदीश्वर।।
कहाँ प्रभू को जनम भयो है-२
कौन झुलावे पालना, मरुदेवी लोरी गावें।। आदी.।।
नगरि अयोध्या में जनम भयो है-२,
इन्द्र झुलावे पालना, मरुदेवी लोरी गावें।। आदी.।।
कौन पिताश्री धन्य हुए हैं-२,
किनने जायो ललना, मरुदेवी लोरी गावें।। आदी.।।
नाभिराय पितु धन्य हुए हैं-२,
मरुदेवी जायो ललना, मरुदेवी लोरी गावें।। आदी.।।
स्वर्ग से इन्द्र-इन्द्राणी आये-२,
सभी झुलाएं पालना, मरुदेवी लोरी गावें।। आदी.।।
माता पाकर धन्य हुई हैं-२,
तीर्थंकर सा ललना, मरुदेवी लोरी गावें।। आदी.।।
यही ''चन्दनामति'' मैं चाहूँ-२,
पाऊँ प्रभु सा पालना, मरुदेवी लोरी गावें।। आदी.।।

बालक्रीड़ा का गीत

तर्ज - नानी तेरी मोरनी को.....

चलो बच्चों! चलो मिलके खेल खेलेंगे।
अपने प्रभु के साथ मिलके खेल खेलेंगे।।
अच्छे बच्चों! प्यारे बच्चों! सुन्दर अवसर आया है।
तीर्थंकर बालक ने तुमको अपना मित्र बनाया है।।
चलो बच्चों! चलो मिलके खेल खेलेंगे।
अपने प्रभु के साथ मिलके खेल खेलेंगे।।1।।
छुक छुक गाड़ी रेल चलाओ आंख मिचौली खेलो अब।
जिनवर राजा खड़े हैं देखो खेल कबड्डी खेलो अब।।
चलो बच्चों! चलो मिलके खेल खेलेंगे।
अपने प्रभु के साथ मिलके खेल खेलेंगे।।2।।
तीर्थंकर हैं राजकुंवर ये इनकी महिमा न्यारी है।
इन पर तो ''चन्दनामती'' इनकी माता बलिहारी हैं।।
चलो बच्चों! चलो मिलके खेल खेलेंगे।
अपने प्रभु के साथ मिलके खेल खेलेंगे।।3।।

राजदरबार का गीत

तर्ज—लिया प्रभू अवतार.....

लगा प्रभू दरबार, जय जयकार जय जयकार जय जयकार।
अवध के राजकुमार, जय जयकार जय जयकार जय जयकार।।
आज खुशी है आज खुशी है, हमें खुशी है तुम्हें खुशी है।
खुशियाँ अपरम्पार, जय जयकार.....।। लगा....।।1।।
पुष्प और रत्नों की वर्षा, सुरपति करते हरषा-हरषा।
बजे दुन्दुभी सार, जय जयकार.....।। लगा....।।2।।

नाभिराय ने ऋषभदेव का, राज्यपट्ट अभिषेक किया है।
सबको हर्ष अपार, जय जयकार.....।। लगा....।।३।।

प्रभु ने राजनीति सिखलाई, धर्मनीति की बात बताई।
धर्म ही जग में सार, जय जयकार.....।। लगा....।।४।।

आवो हम सब प्रभु गुण गावें, धन्य ''चन्दनामति'' हो जावें।
सब जग मंगलकार, जय जयकार.....।। लगा....।।५।।

तीर्थंकर वैराग्य का गीत

तर्ज–जइयो न लला.....

जाएगा कहाँ, मेरा लाल मुझे छोड़ के।
माता-पिता सबसे, ममता को तोड़ के।।टेक.।।

ये सारा वैभव बेटा, तेरी तो माया है।
सारी धरा पर बेटा, तेरी ही छाया है।।
कैसे जाएगा इनसे, मुखड़े को मोड़ के।
जाएगा कहाँ, मेरा लाल मुझे छोड़ के।।1।।

ऐसा क्या सोचा तूने, तुझको क्या हो गया।
मेरा ये राजा बेटा, वैरागी हो गया।।
महलों के सुख को कैसे, जाएगा छोड़ के।
जाएगा कहाँ, मेरा लाल मुझे छोड़ के।।2।।

दीक्षा के समय का गीत

तर्ज—दिल के अरमां.....

प्रभु जी सिद्धि कांता वरने चल दिये।
संग में चार हजार राजा चल दिये।। प्रभु जी.।।

सारी धरती पर प्रभू का राज्य था।
किन्तु प्रभु को हो गया वैराग्य था।।
तज के सब संसार, वे तो चल दिये।
संग में चार हजार राजा चल दिये।।१।।

वन में जाकर नग्न दीक्षा धार ली।
अवध की जनता दुःखी अपार थी।।
पंचमुष्टी केशलुंचन कर लिये।
संग में चार हजार राजा चल दिये।।२।।

दीक्षा लेकर वे तो ध्यान मग्न हुए।
बाकी सब राजा नियम से च्युत हुए।।
सम्बोधा वनदेव ने नहिं मुनिमार्ग ये।
संग में चार हजार राजा चल दिए।।३।।

छह महीने के बाद चले आहार को।
हुआ जहाँ आहार, धरा गजपुर की वो।।
तभी ''चन्दनामती'' मुनी व्रत पल रहे।
संग में चार हजार राजा चल दिए।।४।।

दीक्षा के समय का भजन

तर्ज—चल दिया छोड़.....

सब अथिर जान संसार, तजा घर बार, ऋषभप्रभु स्वामी।
फिर नहीं किसी की मानी।
पहले तो ब्याह रचाया था, सबको सब कुछ सिखलाया था।
राजाओं ने भी राजनीति तब जानी-
फिर नहीं किसी की मानी।।१।।

इक दिन नीलांजना नृत्य हुआ, प्रभु का मन पूर्ण विरक्त हुआ।
दे पुत्र भरत को राज्य बने वे ज्ञानी-
फिर नहीं किसी की मानी।।२।।

प्रभु नगरि अयोध्या छोड़ चले, पहुँचे प्रयाग के उपवन में।
हुई केशलोंच से उनकी शुरू कहानी, फिर नहीं किसी की मानी।।
फिर नहीं किसी की मानी।।३।।

वटवृक्ष तले ध्यानस्थ हुए, केवलज्ञानी भी यहीं हुए।
''चन्दनामती'' यह तीर्थ उन्हीं की निशानी, फिर नहीं किसी की मानी।।
फिर नहीं किसी की मानी।।४।।

आहार के समय का गीत

तर्ज—एक परदेशी.....

प्रभु ऋषभदेव का आहार हो रहा,
हस्तिनापुरी में जयजयकार हो रहा।।
प्रथम प्रभू का प्रथम पारणा, प्रथम बार जब हुआ महल में।। हुआ.....।।
पंचाश्चर्य की वृष्टि हुई थी, चौके का भोजन अक्षय हुआ तब।। अक्षय.....।।
भक्ती में विभोर सब संसार हो रहा,
हस्तिनापुरी में जयजयकार हो रहा।। प्रभू.....।।१।।

भरत ने नगरि अयोध्या से आकर, श्रेयांस का सम्मान किया था।। श्रेयांस.....।।
दानतीर्थ के प्रथम प्रवर्तक, कहकर उन्हें बहुमान दिया था।। बहुमान.....।।
राजा के महलों में मंगलाचार हो रहा,
हस्तिनापुरी में जयजयकार हो रहा।। प्रभू.....।।२।।

सब मिलकर अक्षय तृतिया को, आहार दान का पर्व मनाओ।
गुरु को आहार दे 'चन्दनामति', सबको गन्ने का रस भी पिलाओ।।.....रस भी पिलोओ।।
देखो कैसा धर्म का प्रचार हो रहा,
हस्तिनापुरी में जयजयकार हो रहा।। प्रभू.....।।३।।

आहार के समय का गीत

आओ रे आओ, खुशियाँ मनाओ, यह मंगल बेला है।
मेरे घर का, कण-कण पावन, प्रभु चरणों से बना है।
बोलो जय जय जय, बोलो जय जय जय।।टेक.।।

बड़े पुण्य से गुरुओं के, आहार का अवसर आता,
साधु मुनि आर्यिका को, भक्ती से पड़गाया जाता,
चौक बनाकर घर के आगे,
चौक बनाकर घर के आगे, लगा भक्ति का मेला,
मेरे घर का, कण-कण पावन, प्रभु चरणों से बना है।
बोलो जय जय जय, बोलो जय जय जय।।1।।

निरन्तराय आहार कराकर, मन में खुशी हुई है,
मानो आज मुझे कोई, निधि ही अनमोल मिली है,
जय-जयकार करो अब गुरु की,
जय-जयकार करो अब गुरु की, अवसर बड़ा रंगीला,
मेरे घर का, कण-कण पावन, प्रभु चरणों से बना है।
बोलो जय जय जय, बोलो जय जय जय।।2।।

यह आहार की महिमा, शास्त्रों में बतलाई जाती,
पंचाश्चर्य वृष्टि करने, देवों की टोली आती,
भोजन भी अक्षय हो जाता,
भोजन भी अक्षय हो जाता, उस दिन उस चौके का,
मेरे घर का, कण-कण पावन, प्रभु चरणों से बना है।
बोलो जय जय जय, बोलो जय जय जय।।3।।

शक्ती के अनुसार दान दे, अपना पुण्य बढ़ाओ,
इस अवसर पर अपने घर में, मंगलाचार कराओ,
जीवन मंगलमयी सदा हो,
जीवन मंगलमयी सदा हो, अपना और सभी का,
मेरे घर का, कण-कण पावन, गुरु चरणों से बनेगा।
बोलो जय जय जय, बोलो जय जय जय।।4।।

ज्ञानकल्याणक गीत

तर्ज—माई रे माई.....

आओ रे आओ खुशियाँ मनाओ, उत्सव सभी मनावो।
प्रभु को केवलज्ञान हुआ है, समवसरण रचवाओ।।
बोलो रे जय जय जय.....।
पुरिमतालपुर के उपवन में, ज्ञान हुआ जब प्रभु को।
इन्द्राज्ञा से धनपति ने, रच डाला समवसरण को।।
नभ में अधर विहार करें वे.....
नभ में अधर विहार करें वे, दर्शन कर सुख पाओ।
प्रभु को केवलज्ञान हुआ है, समवसरण रचवाओ।।
बोलो रे जय जय जय.....।।१।।
चरण कमल तल स्वर्णकमल की, रचना इन्द्र करे हैं।
सोने में होती सुगंधि है, यह साकार करे हैं।।
उन जिनवर के दर्शन करने.....
उन जिनवर के दर्शन करने, भव्य सभी आ जावो।
बोलो रे जय जय जय.....।।२।।
बीस हजार हाथ ऊपर है, समवसरण की रचना।
अंधे-लूले-लंगड़े-रोगी, चढ़कर कभी थकें ना।।
यही ''चन्दनामती'' प्रभू की,.....
यही ''चन्दनामती'' प्रभू की, महिमा सब मिल गाओ।
प्रभु को केवलज्ञान हुआ है, समवसरण रचवाओ।।
बोलो रे जय जय जय.....।।३।।

समवसरण गीत

तर्ज—सौ साल पहले.....

बीते युगों में यहाँ पर समवसरण आया था.....समवसरण आया था।
मैंने न जाने तब कहाँ जनम पाया था।टेक.।।

करोड़ों साल पहले भी, हजारों साल पहले भी।
ऋषभ महावीर इस धरती पर खाए और खेले भी।।
भारत की वसुधा पर तब, स्वर्ग उतर आया था.....स्वर्ग उतर आया था।
मैंने न जाने तब कहाँ जनम पाया था।।१।।
हुआ था जिनवरों को दिव्य केवलज्ञान जब वन में।
तभी ऐसे समवसरणों की रचना की थी धनपति ने।।
इन्द्र मुनी चक्री सबने लाभ बहुत पाया था-लाभ बहुत पाया था।
मैंने न जाने तब कहाँ जनम पाया था।।२।।
आज के इस महाकलियुग में नहिं साक्षात् जिनवर हैं।
तभी हम मूतिर्यों को प्रभु बनाकर रखते मंदिर में।।
सतियों ने इनकी भक्ति करके नाम पाया था-करके नाम पाया था।
मैंने न जाने तब कहाँ जनम पाया था।।३।।
अधर आकाश की रचना धरा पर आज दिखती है।
बीच में ''चन्दना'' देखो प्रभू की गंधकुटि भी है।।
समवसरण का यह वर्णन शास्त्रों में आया था.....शास्त्रों में आया था।
मैंने न जाने तब कहाँ जनम पाया था।।४।।

केवलज्ञान गीत

तर्ज—तुम तो ठहरे परदेशी.....

समवसरण दर्शन करो, तो भव्य कहलाओगे।
यदि तुम अभव्य हुए, तो दर्श नहीं पाओगे।। टेक.।।
प्रभु जी की धर्म सभा, में जो भी आता है।
तुम भी दिव्यध्वनि को सुनो, तो भव से तिर जाओगे।। समवसरण.।।१।।
गूंगे भी वहाँ जाकर, बोलने लग जाते हैं।
तुम भी आज श्रद्धा करो, तो आत्मसुख पाओगे।। समवसरण.।।२।।
इन्द्रभूति गौतम का भी, मान गलित हुआ था वहाँ।
देखो वही मानस्तंभ, मुक्तिपथ पाओगे।। समवसरण.।।३।।
दर्शनों के भावों से, मेढक ने देवगति ली।
दर्शन करो तुम भी तो, देवगती पाओगे।। समवसरण.।।४।।

भव्य या अभव्यपने की, ''चन्दना'' परीक्षा करो।
दर्शन से भव्यत्व की, श्रेणी में आओगे।। समवसरण.।।५।।

सामूहिक नृत्य गीत

तर्ज—रंग बरसे भीगे चुनर वाली.....

रंग छलके ज्ञान गगरिया से रंग छलके.....
हो.....रंग छलके ज्ञान गगरिया से रंग छलके.....हो.....।टेक.।।

जग को होली का रंग सुहाता-२
तुमको सुहाती ज्ञान गंग, जगत तरसे रंग छलके....हो....।।१।।

जग को सुहाती, जयपुर की चुनरिया-२
तुम्हें भाती चरित्र चुनरिया, जो मन हरषे रंग छलके.....हो.....।।२।।

जग को सुहाते, रत्नन के गहने-२
तुम्हें भाते ज्ञान के गहने, रतन बरसे रंग छलके....हो....।।३।।

जग को सुहाती, विषयों की लाली-२
तुमको सुहाती जिनवाणी, जगत झलके रंग छलके.....हो.....।।४।।

कहे ''चन्दना'' सब मिल आओ-२
हम भी सुनें जिनवाणी, ज्ञान बरसे रंग छलके.....हो.....।।५।।

निर्वाणकल्याणक गीत

तर्ज—माई रे माई.....

ऋषभदेव निर्वाण महोत्सव, मिलकर सभी मनाएँ।
आओ इस भारत वसुधा पर, अगणित दीप जलाएँ।।

प्रभू की जय जय जय, प्रभू की जय जय जय जय जय।

कोड़ा-कोड़ी वर्ष पूर्व तिथि माघ कृष्ण चौदश थी।
अष्टापद से मोक्ष पधारे, ऋषभदेव जिनवर जी।।
तब स्वर्गों से इन्द्रों ने आ.....

तब स्वर्गों से इन्द्रों ने आ, दीप असंख्य जलाए।
आओ इस भारत वसुधा पर, अगणित दीप जलाएँ।।

प्रभू की जय जय जय, प्रभू की जय जय जय जय जय।।१।।

ऋषभदेव से महावीर तक, हैं चौबिस तीर्थंकर।
इन सबका उपदेश एक ही, धर्म अहिंसा हितकर।।
जिओ और जीने दो सबको.....
जिओ और जीने दो सबको, यह संदेश सुनाएं।
आओ इस भारत वसुधा पर, अगणित दीप जलाएँ।।

प्रभू की जय जय जय, प्रभू की जय जय जय जय जय।।२।।

सिद्धक्षेत्र की भक्ती करके, हम भी सिद्ध बनेंगे।
जब तक सिद्ध नहीं बनते, तब तक प्रभु भक्ति करेंगे।।
सभी ''चन्दनामती'' खुशी से.....
सभी ''चन्दनामती'' खुशी से, यही भावना भाएँ।
आओ इस भारत वसुधा पर, अगणित दीप जलाएँ।।

प्रभू की जय जय जय, प्रभू की जय जय जय जय जय।।३।।

चौबीस तीर्थंकर	प्रथम गणधर	प्रथम गणिनी	प्रथम आहार दाता	प्रथम आहार स्थल	वैराग्य का निमित्त
1. ऋषभदेव	श्री वृषभसेन	आर्यिका ब्राह्मी	राजा श्रेयांस	हस्तिनापुर	नीलांजना के नृत्य को देखते हुए
2. अजितनाथ	श्री सिंहसेन	आर्यिका प्रकुब्जा	राजा ब्रह्म	साकेतनगरी	उल्कापात देखकर
3. संभवनाथ	श्री चारूषेण	आर्यिका धर्मार्या	राजा सुरेन्द्रदत्त	श्रावस्वी	मेघों का विभ्रम देखने से
4. अभिनंदननाथ	श्री वज्रनाभि	आर्यिका मेरुषेणा	राजा इन्द्रदत्त	साकेत नगरी	आकाश में मेघों का महल नष्ट होता देखकर
5. सुमतिनाथ	श्री अमर	आर्यिका अनंतमती	राजा पद्म	सौमनस नगर	संसार के क्षणिक सुखों का चिन्तन कर स्वयं वैराग्य
6. पद्मप्रभ	श्री वज्रचामर	आर्यिका रतिषेणा	राजा सोमदत्त	वर्द्धमान नगर	दरवाजे पर बंधे हुए हाथी की दशा सुनने से उन्हें अपने पूर्व भवों का ज्ञान
7. सुपार्श्वनाथ	श्रीबल	आर्यिका मीनार्या	राजा महेन्द्रदत्त	सोमखेट नगर	ऋतु का परिवर्तन देखकर
8. चन्द्रप्रभु	श्री श्रीदत्त	आर्यिका वरुणा	राजा सोमदत्त	नलिन नगर	दर्पण में अपना मुख देख
9. पुष्पदंतनाथ	श्री विदर्भ	आर्यिका घोषार्या	राजा पुष्पमित्र	शैलपुर	उल्कापात से
10. शीतलनाथ	श्री अनगार	आर्यिका धरणा	राजा पुनर्वसु	अरिष्ट नगर	पाले के समूह (कुहरा) को नष्ट हुआ देखकर
11. श्रेयांसनाथ	श्री कुंथु	आर्यिका धारणा	राजा नंद	सिद्धार्थ नगर	बसन्त ऋतु का परिवर्तन देखकर
12. वासुपूज्य	श्री धर्म	आर्यिका सेनार्या	राजा सुंदर	महानगर	संसार की अस्थिरता का चिन्तन कर
13. विमलनाथ	श्रीमंदर	आर्यिका पद्मा	राजा कनकप्रभ	नंदनपुर	हेमन्तु ऋतु में बर्फ की शोभा को तत्क्षण में विलीन होते हुए देखा
14. अनन्तनाथ	श्री जय	आर्यिका सर्वश्री	राजा विशाख	साकेतपुर	उल्कापात देखकर

चौबीस तीर्थंकर	प्रथम गणधर	प्रथम गणिनी	प्रथम आहार दाता	प्रथम आहार स्थल	वैराग्य का निमित्त
15. धर्मनाथ	श्री अरिष्टसेन	आर्यिका सुव्रता	राजा धन्यषेण	पाटलिपुत्र	उल्कापात देखने से
16. शांतिनाथ	श्री चक्रायुध	आर्यिका हरिषेणा	राजा सुमित्र	मंदिरपुर	दर्पण में अपने दो प्रतिबिम्ब देखकर
17. कुंथुनाथ	श्री स्वयंभू	आर्यिका भाविता	राजा धर्ममित्र	हस्तिनापुर	पूर्व भव का स्मरण हो जाने से
18. अरनाथ	श्री कुंभार्य	आर्यिका यक्षिला	राजा अपराजित	चक्रपुर	मेघों का अकस्मात् विलय होना देखकर
19. मल्लिनाथ	श्री विशाख	आर्यिका बंधुषेणा	राजा नंदिषेण	मिथिलानगरी	पूर्व जन्म के सुन्दर अपराजित विमान का स्मरण करके
20. मुनिसुव्रतनाथ	श्री मल्लि	आर्यिका पुष्पदंता	राजा वृषभसेन	राजगृह	हाथी को अपने पूर्व भव का स्मरण हो गया और उसने प्रभु से संयमासंयम
21. नमिनाथ	श्री सुप्रभार्य	आर्यिका मंगिनी	राजा दत्त	वीरपुर	अपने पूर्व भव के संबंध का स्मरण कर
22. नेमिनाथ	श्री वरदत्त	आर्यिका राजीमती	राजा वरदत्त	द्वारावती	पशुओं के प्रति अत्याचार देखकर
23. पार्श्वनाथ	श्री स्वयंभू	आर्यिका सुलोचना	राजा धन्य	गुल्मखेट	अयोध्या के दूत द्वारा भगवान ऋषभदेव का वर्णन सुनकर
24. महावीर	श्री इन्द्रभूति	आर्यिका चन्दना	राजा वकुल	कौशाम्बी	पूर्वभव का स्मरण होने से